॥ ओ३म् ॥

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

Date of Printing = 05-12-21
प्रकाशन दिनांक = 05-12-21

दिसम्बर २०२१

वर्ष ५१ : अङ्क २
दयानन्दाब्द : १९७
विक्रम-संवत् : मार्गशीर्ष-पौष २०७८
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,१२२

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
प्रकाशक व सम्पादक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)
४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

कुल पृष्ठ २८
एक प्रति १५.०० रु०

वार्षिक शुल्क १५०) रुपये
पंचवर्षीय शुल्क ५००) रुपये
आजीवन शुल्क ११००) रुपये
विदेश में ५०००) रुपये

इस अंक में

- वेदोपदेश २
- मुगल महान थे या तालिबान थे ? ४
- अश्विनी कुमारों के विचित्र गुण ६
- कैसा है अरब का नया धर्म जो..... ९
- दु:खी दिल की पुरदर्द दास्ताँ ११
- तीर्थ १५
- पुनर्जन्मवाद ! १८
- आप भी कहीं भेड़चाल के शिकार..... २३
- महर्षि दयानन्द सरस्वती की खरी..... २५
- साहित्य समीक्षा २६

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अत: किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण – 3000 रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) – 5000 रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

॥ ओ३म् ॥

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। —महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश—स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः। देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥

—ऋ० २।२६।३

शब्दार्थ—यः = जो **श्रद्धामनाः** = श्रद्धायुक्त मनवाला **हविषा** = श्रद्धा से, त्यागभावना से, आत्मसमर्पण के भाव से **देवानाम्** = देवों के, विद्वानों के, निष्काम ज्ञानियों के **पितरम्** = पालक, रक्षक, पिता **ब्रह्मणः+पतिम्** = ब्रह्मणस्पति, लोकपालक, वेदरक्षक भगवान् को **आ+विवासति** = पूरी तरह पूजता है, **सः+ इत्** = वही **जनेन** = लोकसेवा द्वारा **धना** = धनों को **भरते** = पुष्ट करता है, **सः** = वही **विशा** = प्रजा के द्वारा **सः** = वही **जन्मना** = विविध पदार्थों की उत्पत्ति के द्वारा धन धारण करता है, **सः** = वही **पुत्रैः** = पुत्रों के द्वारा तथा **नृभिः** = मनुष्यों के द्वारा अथवा नेताओं के द्वारा **वाजम्** = ज्ञान, अन्न, बल तथा धनों को **भरते** = धारण करता है।

व्याख्या—इस मन्त्र में भगवान् की पूजा का फल बताया गया है। भगवान् को इस मन्त्र में ब्रह्मणस्पति कहा गया है, किसी दूसरे मन्त्र में— **विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि** (ऋ०२।२३।२) —कहा गया है। भगवान् ही लोक तथा ज्ञान का उत्पादक है, वही उनका पालक है । जो उत्पादक है, वही पालक है, अतः वह अवश्य पूजने योग्य है।

हम मर्त्य हैं। आज जीते हैं, कल मर जाएंगे। फिर हमें कोई जानेगा भी नहीं। देव अमर्त्य होते हैं, शरीर नाश के साथ उनका नाश नहीं होता है। उनका यशःशरीर कभी भी शीर्ण नहीं होता। देव भी उसी से बनते हैं, वह उनका पिता है।

खाली पूजा करने आये हो या कुछ लाये भी हो? अरे गुरु के पास जाना होता है, तो समित्पाणि होकर हाथ में समिधा लेकर जाते हैं। गुरुओं के गुरु के पास जाते समय पास कुछ भी नहीं, खाली हाथ जा रहे हो, कैसे पूजा करोगे?

भगवान् द्रव्य के भूखे नहीं हैं। द्रव्य=पदर्थ तो सारा उन्हीं का है। तुम उन्हें क्या दोगे? अपना आपा त्यागो, उसकी हवि डालो, विवश होकर नहीं। ज्ञात हो गया है कि एक दिन यह छोड़ना होगा। इसलिए विपत्ति समझ कर मत छोड़ो, वरन् **'श्रद्धामनाः'** श्रद्धायुक्त मानवाले होकर। श्रद्धा में बड़ी शक्ति है। वेद ने कहा है—

श्रद्धया विन्दते वसु ॥ —ऋ० १०।१५१।४

श्रद्धा से धन मिलता है।

सचमुच लौकिक और पारलौकिक धन श्रद्धा के बिना प्राप्त नहीं हो सकता। ब्रह्मणस्पति धनपति को भी कहते हैं। धन की कामना है तो धनपति= ब्रह्मणस्पति भगवान् की पूजा करो।

भगवान् अपने धन से क्या करता है? उसने सारा का सारा धन अपनी जीव प्रजा को दे रखा है। त्याग के कारण ही भगवान् धनी है। जो धनी होते हुए भी धन का त्याग नहीं करते वे दुःखी रहते हैं, बाजार से फल मिल सकते हैं, किन्तु

कंजूस खर्चना नहीं चाहता। धन के होते हुए भी भूख से तड़प रहा है। धन दे दे, फल आदि ले ले, भूख मिट जाए, अशान्ति हट जाए। धन के त्याग से ही शान्ति मिलती है, इसलिए धनपति भगवान् का उपासक धन प्राप्त करके– **स इज्जनेन....भरते धना** = वह जनसेवा द्वारा धन धारण करता है, अर्थात् वह संसारी जनों को धन दे डालता है।

उसे प्रजा मिली है, उसके घर पुत्र-पौत्र के जन्म होते हैं। ऐसे दाता के पास नेता तक आते हैं। वह धन के साथ अपने पुत्र-पौत्र रूप जन भी दे डालता है, वह कमाता है त्याग के लिए। इसे–**त्यागाय संभृतार्थानाम्** (रघुवंश १।७) =त्याग के लिए धन-संग्रह की बात स्मरण है।

ब्रह्मणस्पति से उसे केवल धन ही नहीं 'वाज' भी मिला है ज्ञान भी मिला है। उसे भी वह दे डालता है, अर्थात् भगवद् भक्त का जन, धन, ज्ञान सब परार्थ है। इससे अगले मन्त्र में इस बात को बहुत खोलकर कहा गया है–

यो अस्मै हव्यैर्घृतवद्भिरविधत्प्र तं प्राचा नयति ब्रह्मणस्पतिः ।
उरुष्यतिमंहसो रक्षती रिषों होश्चिदस्मा उरुचक्रिरद्भुतः ॥४॥

जो ज्ञान-प्रकाशयुक्त श्रद्धामय त्याग से इसकी पूजा करता है, उसको ब्रह्मणस्पति आगे से, उन्नति की ओर ले जाता है। पाप की प्रबल भावना से, रिस[१] से, हिंसा से उसकी रक्षा करता है। वह महान्, इस [जीव] का कार्य-साधक होकर, अभूतपूर्व बना हुआ, पाप से बचाता है।

भगवान् ही सबको आगे ले जाते हैं और जो भगवान् की पूजा करता है वह सचमुच उननति प्राप्त करता है, ऊँचा उठ जाता है।

मनुष्य के अन्दर पाप की प्रबल भावनाएं उठती हैं। हिंसा की इच्छा पैदा होती है, कुटिलता की कामना आती है। भगवान् ही उससे बचाते हैं। वे अपापविद्ध हैं। जो उसकी शरण में जाएगा, पाप से बच जाएगा, पाप से बचने का अर्थ है दुःख से बचना। जितने दुःख हैं, उन सब का कारण पाप है। कौन है जो दुःख से छुटकारा नहीं पाना चाहता! दुःख से छूटने के लिए पाप छोड़ना होगा। पाप का मूल अज्ञान है, क्योंकि जानबूझकर कोई दुःख के साधनों का अनुष्ठान नहीं करता। अज्ञान ज्ञानवान् की संगति से मिटेगा। इसीलिए ब्रह्मण-स्पति=ज्ञानपति भगवान् की उपासना का विधान किया है।

उपसना और संगति एक हैं। उपासना=पास बैठना, संगति=एक साथ चलना। दोनों में साथ अनिवार्य है। भगवान् से बढ़कर कौन ज्ञानी है! अतः उसी की उपासना करनी योग्य है। ❑

१. क्रोध ।

विनम्र बनो !

विद्या ददाति विनयं, विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति, धनाद् धर्मस्ततः सुखम् ॥

विद्या से विनम्रता आती है, विनम्रता से पात्रता=योग्यता प्राप्त होती है, योग्यता से धन मिलता है, धन से धर्म-कार्यों का अनुष्ठान होता है और सुख की प्राप्ति होती है । यदि आप भी सुख, शान्ति और आनन्द चाहते हैं तो नम्र बनो ।

मुगल महान थे या तालिबान थे ?

–धर्मपाल आर्य

पिछले दिनों अफगानिस्तान को लेकर यूनिसेफ की कार्यकारी निदेशक हेनरिटा फोरे की एक रिपोर्ट आई है। जिसमें अफगानिस्तान में कई परिवार बतौर दहेज धन के लालच में अपनी २० दिन की मासूम बच्ची का भी सौदा कर रहे हैं। बाल विवाह पहले की अपेक्षा इतने अधिक बढ़ गये। बाल विवाह बढ़ा, पर्दा प्रथा बढ़ा तथा छोटी और मासूम बच्चियों तक को बुरके, हिजाब में लपेटा जा रहा है। एक दो प्रान्त छोड़कर तालिबान के आने के बाद लड़कियों के स्कूल जाने पर पाबंदी है।

अभी भी भारत में बहुत लोग पर्दा प्रथा या बाल विवाह को यहाँ की संस्कृति समझते हैं। शायद हेनरिटा फोरे की ये रिपोर्ट ये बताने के लिए काफी है कि ये हमारी संस्कृति नहीं बल्कि एक थोपी गयी अरबी मानसिकता थी। शरियत कानून के अनुसार आज भी सऊदी अरब में महिला अकेली बाहर नहीं जा सकती। अफगानिस्तान में लड़कियों पर कोड़े बरस रहे हैं। नाइजीरिया में कुरान को मानने वाले स्कूलों से बच्चियों को उठा रहे हैं और यहाँ चर्चा चल रही है हिन्दुओं में व्याप्त कुप्रथाओं पर ।

इसी कारण ये सवाल अध्ययन माँगने लगता है कि हिंदुस्तान में ये कुप्रथा कब खड़ी हुई, कहाँ से आई! क्यों यहाँ बाल विवाह होने आरम्भ हुए और क्यों महिलाओं को पर्दा करना पड़ा। सतयुग, त्रेता और द्वापर काल से लेकर कलयुग में भी सम्राट समुद्रगुप्त, अशोक विक्रमादित्य, चंद्रगुप्त मौर्य व पृथ्वीराज चौहान व आल्हा-ऊदल की कथाओं में भी शिक्षित व युवा कन्याओं व युवकों के विवाह का वर्णन मिलता है। कोई पुरदाह व्यवस्था नहीं थी। महिलाएं विवाह और पुनर्विवाह के लिए स्वतंत्र थीं। यहाँ तक कि उनके बीच विधवा-विवाह की भी अनुमति थी। ना कहीं पर्दा प्रथा थी और ना लड़कियों को पढ़ाना पाप समझा जाता था। फिर इस भारत में ऐसा क्या हुआ कि सब बंद हो गया। महिलायें घर में कैद घूघंट पर्दे का पहरा आरम्भ हो गया। जहाँ युवा कन्याओं को अपना पति चुनने का अधिकार था वहाँ अचानक छोटी छोटी बच्चियों की शादी होने लगी। उन बच्चियों की जिन्हें विवाह का मतलब तक नहीं पता होता था।

जैसा आज अफगानिस्तान में तालिबान कर रहा है ऐसा यहाँ करीब पाँच सौ साल पहले हो चुका है। और सवाल बन जाता है कि तब यहाँ कौन सा तालिबान था। तालिबान के मुल्ला अखुंद वाला तालिबान था या अकबर का तालिबान ? इतिहास बताता है कि अरब देशों में कबीलाई संस्कृति थी। एक कबीले के लोग दूसरे कबीलों की महिलाएं लूटा करते थे। जिस कारण युद्ध भी होते थे। जब महिलाओं को उठाकर ले आते थे और उन्हें कोई पहचान ना ले इस कारण उन्हें पर्दे में ढक देते थे, बुर्के में डाल देते थे। उन्हें अकेली घर से भी इस कारण नहीं निकलने दिया जाता था कि कहीं वो वापिस अपने पहले घर या पति के पास ना चली जाये। यानि यह प्रथा उस कालखण्ड व क्षेत्र की आवश्यकता बन गयी, जिसे मजहबी मौलानाओं का भी संरक्षण मिला उनके पढ़ने-लिखने पर पाबंदी लगा दी गयी और उन्हें पुरुषों की खेती कहा जाने लगा।

जब ये सब अरब में हो रहा था इन सबसे बेखबर भारत में महिलायें स्वतंत्रता पूर्वक जी रही

थीं। कोई पर्दा-प्रथा नहीं थी। गुरुकुलों में पढ़ती थीं। युवा होने पर अपने पति का खुद चुनाव करती थीं। या फिर प्रतियोगिता होती थी जिसे स्वयम्वर भी कहा जाता था। पुरुष को किन्हीं अस्त्र शस्त्र प्रतियोगिता हो या दक्षिण भारत की जलीकट्टू जैसी प्रतियोगिता मसलन पुरुष खुद को साबित करना होता था तब लड़कियां उन्हें अपने पति के रूप में चुनाव करती थीं। सबकी अलग-अलग श्रेणी होती थी। अध्यनशील युवा विदुषी कन्या अध्यनशील और शस्त्र में पारंगत कन्या विद्वान पुरुषों का अपनी मर्जी से चुनाव किया करती थी।

उसी दौरान अरब का तालिबान भारत आना शुरू हो गया। भारत में उस समय अहिंसा का प्रचार चरम पर था तथा आडंबरों की अन्तिम सीमा तक पहुँच गया था। कुछ मतों पन्थों के अहिंसा के सिद्धान्त ने अस्त्र-शस्त्र भी जमीन में गढ़वा दिए थे। इससे आक्रमणकारियों का कार्य सरल हो गया। मुगल तालिबानियों ने इसका जमकर फायदा उठाया। धन, राजपाट, महिलायें, उद्योग व्यापार लूटा और कब्जा भी किया तथा धार्मिक व शैक्षणिक संस्थाओं को नष्ट करना आरम्भ कर दिया। शस्त्र विहीन जनता और प्राकृतिक सम्पदा की प्रचुरता के कारण तालिबानी मुगल भारत में ही जम गए।

उनके मजहब में चार विवाहों की प्रथा थी। इस कारण सत्ता के बल पर तालिबानी मुगल लुटेरे नव-विवाहितों के डोले लूटने लगे। युवा लड़कियों का अपहरण व महिलाओं के साथ दुराचार आम हो गया। लड़कियों का विद्यालय जाना भी दूभर हो गया। इस डर से अनेकों हिन्दू राजाओं ने मुगलों से सन्धियाँ कीं और उनके सहयोगी हो गए। मुगलों तालिबानियों का आतंक चरम पर था, धर्मान्तरण के द्वारा भी उनके सहयोगी बढ़े। मसलन इसे ऐसे समझिये कि नारी सुरक्षा, नारी सम्मान के लिए न तो सैन्य शक्ति थी न ही देशी राजाओं में एकता थी एवं जनसाधारण अर्थात प्रजा भी सामर्थ्यवान नहीं थी। जिस कारण मुगलों द्वारा महिलाओं की लूटपाट व दुराचार पर रोक संभव नहीं थी।

सक्षम लोग अपनी रक्षा कर लेते थे परंतु निर्धन व कमजोरों पर अधिक अत्याचार हुआ। परिणाम-स्वरुप भारतीयों ने भी मुगलों का अनुसरण करते हुए महिलाओं को पर्दा में रखना शुरू कर दिया। और लड़कियों का विद्यालय जाना बंद किया इससे विद्यालय बंद हो गए। पांच से दस वर्ष की आयु में लड़कियों के विवाह होने लगे। युद्ध में मारे गये सैनिकों और राजाओं की पत्नियाँ मुग़ल तालिबानियों के हाथों में रोंदे जाने के डर से उनकी चिता में कूदकर जान देने लगीं। देखते देखते भारत में बाल विवाह व पर्दाप्रथा सती प्रथा प्रारम्भ हुई। सिर्फ इतना ही नहीं डर का आलम ये था कि जब विवाह के दिन दुल्हन लूटी जाने लगी तो इस भारत में रात्रि में चोरी छिपकर विवाह होने आरम्भ हो गये जो आज भी हो रहे हैं।

प्राचीन चित्र कहो या प्रतिमाएं ये बताती हैं कि ईसा से तीन सदी पहले मौर्य और शुंग राजवंश के वक्त तक स्त्री और पुरुष आयताकार कपड़े का एक टुकड़ा शरीर के निचले हिस्से में और एक ऊपरी हिस्से में पहना करते थे। इसके बाद विभिन्न पुस्तकों का अध्ययन बताता है कि मृच्छकट्टिकम की वसंत सेना पर्दे का विरोध करती दिखाई पड़ती है। ललितविस्तर से ज्ञात होता है कि बुद्ध की पत्नी गोपा ने अपने मुँह पर घुँघट डालने का यह कहते हुए विरोध किया कि शुद्ध विचार वालों के लिए बाहरी आवरण की आवश्यकता नहीं होती। कथा सरित्सागर में रत्नप्रभा नामक स्त्री को स्पष्ट शब्दों में इस प्रथा का विरोध करते हुए पाया जाता है। कल्हण की राजतरंगिणी में भी पर्दा प्रथा के प्रचलन की सूचना नहीं मिलती। दसवीं सदी के अरबी-

(शेष पृष्ठ ३७ पर)

अश्विनी कुमारों के विचित्र गुण

–उत्तरा नेरूर्कर, बंगलौर (मो०–९८४५०५८३१०)

पिछले माह मैंने अद्भुत बैल विषयक ऋग्वेद का मन्त्र प्रस्तुत किया था। इस माह हम इसी वेद का एक और विचित्र मन्त्र देखते हैं। यह इतना प्रसिद्ध तो नहीं है, न ही इसकी स्वामी दयानन्द कृत व्याख्या प्राप्त होती है। तथापि यह भी अनेक अर्थों को गर्भ में संजोए है, ऐसा प्रतीत होता है। इनमें से कुछ अर्थ जो मुझे प्राप्त हुए, उनका इस लेख में उल्लेख कर रही हूँ।

यह मन्त्र ऋग्वेद में इस प्रकार पाया जाता है–

सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू नैतोशेव पर्फरीका। उदन्यजेव जेमना मदेरू ता मे जराय्वजरं मरायु ॥ ॥ऋक्० १०।१०६।६॥

इस मन्त्र के पूरे सूक्त के ऋषि 'काश्यपः भूतांशः' और देवता अश्विनी हैं। इस कारण से यहाँ मुख्य विचारणीय विषय दो अश्वियों के जोड़े का है। पुराणों में इन दोनों को देवताओं के भिषक् के रूप में वर्णित किया गया है, परन्तु वेदों में ये अनेक युगलों के अर्थ में आते हैं। वह जोड़ा जो अलग न किया जा सके, ऐसे जोड़े को 'अश्विनौ' संज्ञा से वर्णित किया जाता है। इसलिए यह पद सर्वदा द्विवचन में ही प्राप्त होता है। ऋग्वेद के १।२२ वें सूक्त के प्रथम चार मन्त्रों आदि स्थलों पर स्वामी दयानन्द ने इस युग्म के अनेक अर्थ दर्शाए हैं, जैसे– द्यौ-पृथिवी, अग्नि-जल, अग्नि-सोम, उपदेष्टा-उपदेश्य, अध्यापक-शिष्य, रथ बनाने व चलाने वाला, पति-पत्नी, आदि, आदि। इन सभी अर्थों में हम देख सकते हैं कि जोड़े के एक भाग का अस्तित्व दूसरे भाग के बिना नहीं हो सकता। परन्तु किसी पदार्थ के द्वित्व के रूप में भी अर्थ प्राप्त होता है। इसी सरणी में दो वैद्यों का भी अर्थ मिलता है। पुराणों में इनको जुड़वां भाई बताया गया है। अश्वी द्युस्थानीय देवों में परिगणित हैं। इसलिए ये कान्तिमान हैं। 'अशूङ् व्याप्तौ सङ्घाते च' धातु से निष्पन्न होने से, इनका व्यापकत्व भी अभिप्रेत है।

प्रथम दृष्टि में ही मन्त्र की रचना अद्भुत लगती है। उसके पद असम्भव और निरर्थक से प्रतीत होते हैं। इसीलिए इसकों पूर्व मीमाँसा के सूत्र **"सतः परमविज्ञानम्** (१।२।४९)" अर्थात् "(उपरिनिर्दिष्ट कारणों से) अन्य प्रकार से प्रतीत होने वाली वैदिक मन्त्रों की अर्थहीनता अज्ञान के कारण होती है" के अन्तर्गत व्याख्याकारों ने पढ़ा है। यह इसीलिए कि यह मन्त्र प्रथमदृष्ट्या अर्थहीन सा लगता है –जर्भरी, तुर्फरी जैसे शब्द संस्कृत के शब्द ही नहीं प्रतीत होते।

वस्तुतः, यह मन्त्र यमकालंकार का श्रेष्ठ उदाहरण है जैसा कि मैंने अपने पूर्व लेख 'वेदों में अलंकार' में दर्शाया था। अपितु इस सूक्त के सभी मन्त्रों का यह वैशिष्ट्य है–विचित्र यमकाकार पद।

जहाँ तक अर्थ का प्रश्न है, यास्क ने निरुक्त में एक अर्थ दर्शाए हैं, जिनकी विस्तार से व्याख्या श्री चन्द्रमणि विद्यालंकार पालीरत्न जी ने अपने निरुक्त-भाष्य में एक प्रकार से घटाई है और स्वामी ब्रह्ममुनि ने अपने ऋग्वेद-भाष्य में कुछ भेद के साथ। उदयवीर जी ने उपरोक्त पूर्वमीमाँसा के सूत्र की व्याख्या में एक अन्य ही अर्थ दर्शाया है जो कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से चिन्तित है।

पहले हम निरुक्त वचन देख लेते हैं।

यास्कीय निरुक्त व्याख्या–

निरुक्त में इस ऋग्वैदिक मन्त्र की व्याख्या इस प्रकार है–

अथैषाश्विनोः–(सृण्येवेत्यादिः मन्त्रः)। सृण्येवेति द्विविधा सृणिर्भवति भर्ता च हन्ता च। तथा अश्विनौ चापि भर्तारौ – जर्भरी भर्तारावित्यर्थः, तुर्फरीतू हन्तारौ । नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका - नितोशस्यापत्यं नैतोशं, नैतोशेव । तुर्फरी क्षिप्रहन्तारौ । उदन्यजेव जेमना मदेरू - उदन्यजेवेत्युदकजे इव रत्ने सामुद्रे चान्द्रमासे वा । जेमने जयमने, जेमना मदेरू। ता मे जराय्वजरं मरायु एतज्जरायुजं शरीरं शरदमजीर्णम् ॥

निरुक्तम् अ० १३, ख० ५॥

अर्थात् अश्वी-विषयक यह मन्त्र है। इसमें सृणि = दराती दो प्रकार की होती है–भर्ता और हन्ता । अश्विन् भी इन्हीं दो प्रकार के होते हैं, जिन्हें **'जर्भरी'** पद से भर्ता कहा गया है और **'तुर्फरीत्'** पद से हन्ता। **'नैतोश'** 'नितोश=मारने वाला' का अपत्य है। **'तुर्फरी'** शीघ्र मारने वाला है। **'उदन्यजा इव'** का अर्थ है जल में उत्पन्न होने वाले दो रत्नों के समान जिनमें से एक समुद्रीय है और दूसरा चन्द्रमा से सम्बन्धित। **'जेमने'** का अर्थ वे दो जयशील हों। इस प्रकार के दो अश्विनि मेरे इस जरायु से उत्पन्न, मरणशील शरीर को बूढ़ा न होने दें। इस प्रकार हम पाते हैं कि यास्क की व्याख्या बहुत स्पष्टता से यह नहीं बताती है कि ये दो अश्विन् आखिर हैं क्या। इसीलिए विभिन्न व्याख्याकारों ने अपनी-अपनी मति के अनुसार इस मन्त्र के अर्थ किए हैं । इनमें से पहले देखते हैं–

निरुक्त में श्री चन्द्रमणि विद्यालंकार पालीरत्न जी की व्याख्या–

स्वामी दयानन्द के दूसरे मन्त्रों से कुछ अर्थ ग्रहण करके, पालीरत्न जी की व्याख्या कुछ इस प्रकार है–हे द्यावापृथिवी के अश्वी (एकवचन) स्वामी जगदीश्वर ! जैसे दरांती एक ओर कृषि में पौधों की छटाई करके उनको स्वस्थ व वृद्धिशील बनाती है, वहीं दूसरी ओर व्यर्थ पौधों को काटकर नष्ट कर देती है, वैसे ही तू भर्ता भी है और हन्ता भी। तू, शत्रुहन्ता राजपुत्र के समान, दुष्टों को शीघ्र नष्ट करने वाला और उनको (पर्फरीका) फाड़ने वाला है । तू सामुद्र (मोती) अथवा चान्द्रमस (ज्योत्स्ना) रत्न के समान मन को जीतने वाला अर्थात् अपनी ओर खींचने वाला तथा प्रसन्नताप्रद है । उक्त प्रकार का तू मेरे शरीर को वृद्धावस्था रहित बना दे ।

इस अर्थ में दरांती में गुणों के द्वितव का तो बोध होता है, परन्तु अन्यत्र एकत्व ही समझ में आता है। इसलिए मन्त्र के अन्य पदों का द्विवचन सार्थक नहीं होता। जबकि दरांति उपमा से शरीर की वृद्धि व शल्यक्रिया से रोगनिवारण के अर्थ प्रतीत होते हैं, परन्तु रत्नों और जयशील होने का सामञ्जस्य वृद्धावस्था को दूर करने से नहीं बैठता। इसलिए यह व्याख्या मुझे कुछ न्यून प्रतीत होती है ।

ऋग्वेदभाष्य में स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड जी की व्याख्या–

स्वामी ब्रह्ममुनि जी ने वैद्यों का अर्थ ग्रहण करते हुए इस प्रकार व्याख्या की है–हे अश्वियो! तुम दात्री के समान शरीर के स्वास्थ्य वर्धक गुणों को बढ़ाओ और स्वास्थ्य नाशक दोषों का हनन करो । अत्यन्त दूर प्रहार करने वाले अस्त्र के समान औषधि द्वारा शीघ्र हनन करने वाले, और शल्य क्रिया द्वारा फाड़ने वाले हो । जल में उत्पन्न दो रत्न जैसे जयशील और हर्षप्रद होते हैं, वैसे ही तुम दोनों - औषधि देने वाले वैद्य और शल्य चिकित्सक - रोग पर विजय प्राप्त करने वाले और

सुख देने वाले हो । तुम दोनों मेरे इस जरायु से उत्पन्न, मरणशील शरीर को जरारहित कर दो।

इस व्याख्या में दो अश्वियों का बहुत सुन्दर समन्वय है और उपमाएं भी पर्याप्त स्पष्ट हो जाती हैं (रत्न कैसे जयशील होता है, इसे छोड़कर)। जरा रहित होने से रोगनिवारण और स्वास्थ्य-वर्धन का सामञ्जस्य भी बैठता है । इसलिए यह भाष्य अधिक ग्राह्य है, मेरी मति में ।

पूर्वमीमाँसा के उदयवीर जी के भाष्य में उपलब्ध अर्थ–

अब देखते हैं पण्डित उदयवीर जी की व्याख्या । उनका मानना है कि ऋषि 'भूतांश' का भी यहाँ अर्थ करना चाहिए,[१] और उससे विद्युत् के धनात्मक व ऋणात्मक (positive and negative) अंशों का बोध कराया गया है। सृणि को उन्होंने दात्री न लेकर, हाथी पर प्रयोग होने वाला अंकुश लिया है, जो कि वा० शि० आप्टे के मतानुसार भी है । 'सृ गतौ' धातु से निष्पन्न होने के कारण, यह अर्थ उपयुक्त भी प्रतीत होता है, विशेषकर दात्री की तुलना में । अंकुश द्वारा हाथी को नियन्त्रित भी किया जाता है और आगे भी प्रेरित किया जाता है । इससे उन्होंने विद्युत् के 'पकड़ने व धकेलने', जो कि सम्भवत: आकर्षण व प्रतिकर्षण के समानार्थक हैं, का ग्रहण किया है। 'सृणि' से उन्होंने विद्युत् की तीव्र गति व तीक्ष्णता का भी ग्रहण माना है ।

'जर्भरी' को उन्होंने **'भृञ्** भरणे/**डुभृञ् धारण पोषणयो:'** से ही न लेकर, **'जृभि गात्रविनामे'** से भी निष्पन्न माना है, जिसका अर्थ उन्होंने 'अंगों का मरोड़ना' न लेकर 'अंगों का अदृश्य प्राय होना' लिया है । स्पष्टत: विद्युत् दृष्टिगोचर नहीं होती। भृ धातु से विद्युत् द्वारा परमाणुओं का धारण अथवा विद्युत् के सदुपयोग से पोषण का ग्रहण किया है।

'तृफ हिंसायाम्' से निष्पन्न 'तुर्फरीतु' प्राप्त होने से, विद्युत् के हिंसात्मक स्वरूप का ग्रहण होता है, जिससे वह प्राणी को मार भी देती है। इसी वध करने के अर्थ में **'नैतोशा'** भी आया है। वस्तुत:, धातुपाठ में **'तृफ हिंसायाम्'** न होकर **'तृफ तृप्तौ'** दिया गया है । यह अर्थ भी देते हुए, उन्होंने विद्युत् के प्रयोगों से जनित विभिन्न प्रकार के सुखों का ग्रहण किया है ।

'ञिफला विशरणे' से निष्पन्न **'पर्फरीका'** शब्द फाड़ने या छिन्न-भिन्न करने के अर्थ में है। सो, विद्युत् (electrolysis आदि द्वारा) पदार्थों को छिन्न-भिन्न करने में भी समर्थ होती है, इसलिए उसको इस पद से कहा गया है । यह पद **'पृ पालनपूरणयो: / पूरणे'** से भी बनाया जा सकता है, जब उसका समृद्धि प्रदान करने वाला भृञ् धातु के समान पूर्व अर्थ ही होगा ।

'उदन्यजा' के विषय में उन्होंने बताया कि **'उदन्य = उदक'** + **'जनीप्रादुर्भावे'** अर्थात् जल से उत्पन्न । इसका अर्थ उन्होंने पनबिजली (hydroelectricity) लिया है जो कि प्रभूत समृद्धि उत्पन्न करने के कारण रत्न के समान है ।

'जेमना = जयशीलौ' से उन्होंने विद्युत् के सदा सब पदार्थों पर हावी होने का गुण दर्शाया है ।

'मदेरू' से उन्होंने विद्युत् के अत्यधिक शक्तिशाली होने के कारण जैसे विद्युत् में शक्ति का मद होना बताया है, अथवा विद्युत् से उत्पन्न सुख को द्योतित किया है ।

'अश्विनौ' को चिकित्सक के रूप में उन्होंने बताया है । सो, हम आज सब रुग्णालयों में विद्युत् के उपकरणों के रूप में देख ही सकते

(शेष पृष्ठ १४ पर)

१. युधिष्ठर मीमाँसक जी के समान, उदयवीर जी भी मन्त्र के ऋषि की सार्थकता को मानते थे।

कैसा है अरब का नया धर्म जो मच गया बवाल !

–राजीव चौधरी (मो०–९५४००२९०४४)

यूँ तो दुनिया भर में १९५ के करीब देश है। लेकिन आपको जानकर आश्चर्य होगा कि इन दो सौ के करीब देशों में लगभग ३०० धर्म, मत और पंथ के मानने वाले लोग हैं। यानि भले ही व्यापक रूप से पांच सात धर्म ही सुनने में आते हों हिन्दू, जैन, बौद्ध, ईसाई, इस्लाम और सिख। लेकिन इसके अलावा भी कई और धर्म भी अपना अस्तित्व बनाए रखे हुए हैं, तो कुछ अपना अस्तित्व खो चुके हैं। जैसे अकबर ने चलाया था दीन ए इलाही जो बाद में गायब हो गया। इसे आप ऐसे समझिये कि कोई भी खड़ा होकर नया मत पंथ चला देता है। इसमें कमाल ये है कि अब तो बहुत सारे मत-पंथ की ओफिसियल वेबसाइट भी है। जुड़ना है तो बस एक क्लिक कीजिये।

जैसे अभी हाल ही मैं एक नये मत की खबर न्यूज पेपर की सुर्खियाँ बनी हुई है "अब्राहमिक धर्म" तमाम छोटे बड़े चैनल इस मत की खबर भी दिखा रहे हैं। ऐसे ही जैसे पिछले दिनों ब्रिटेन में एक नया मत रजिस्टर हुआ था "कोपिज्म" जैसे सभी धर्मों के अपने-अपने धार्मिक चिह्न हैं। वैसे ही कोपिज्म का भी अपना धार्मिक चिह्न है। इनका धार्मिक चिह्न कॉपी और पेस्ट से मिलकर बना है। इनके धार्मिक चिह्न में कम्प्यूटर के कीबोर्ड का कंट्रोल सी और कंट्रोल वी बना हुआ है। अप्रैल २०१२ में जब इस धर्म के अनुसार पहली शादी हुई तो इसमें चर्च और पादरी की जगह एक कम्प्यूटर ने अपनी भूमिका निभाई और शादी में सभी लोगों ने अपनी उपस्थिति ऑनलाइन दर्ज कराई।

लेकिन हमारा आज का मुद्दा दूसरा है और वो है अब्राहमिक धर्म । क्योंकि अभी हाल ही में मिस्र देश में धार्मिक एकता के लिए शुरू हुई मुहिम में मस्जिद अल अजहर के सर्वोच्च इमाम अहमद अल तैय्यब ने अब्राहमी धर्म की खूब आलोचना की है। उनकी आलोचना ने अब्राहमी धर्म को एक बार फिर से सुर्खियों में ला दिया है। इस नये मत धर्म को लेकर बीते एक साल से अरब देशों में सुगबुगाहट देखने को मिली है। हालाँकि साथ ही ये भी कहा जा रहा है कि अभी तक अब्राहमी मत के अस्तित्व में आने की कोई आधिकारिक घोषणा नहीं हुई है। ना तो इस मत की स्थापना के लिए किसी ने नींव रखी है और ना ही इसके अनुयायी मौजूद हैं। इतना ही नहीं, इसका कोई धार्मिक ग्रंथ भी उपलब्ध नहीं है। फिर भी ये मत चर्चा का विषय बना हुआ है। फिलहाल इसे एक प्रोजेक्ट की तरह माना जा सकता है।

जैसे आज से कुछ कुछ सालों पहले स्मार्टफोन की चर्चा हुआ करती थी या इलेक्ट्रिक वाहन की। ठीक ऐसे ही इस प्रोडक्ट यानि मत पर विचार और चर्चा चल पड़ी है। कारण इस प्रोजेक्ट के तहत पिछले कुछ समय में इस्लाम, ईसाई और यहूदी- इन तीनों मत में शामिल एक समान बातों को लेकर अब्राहम के नाम से मत बनाने की कोशिशें शुरू हुई हैं, तीनों ही अब्राहम को अपना पैगम्बर मानते हैं।

तो अब क्या ये तीनों एक साथ एक जगह और एक पैगम्बर की पूजा किया करेंगे? इस सवाल का जवाब है नहीं! क्योंकि अब्राहम मत की आरम्भ में ही भ्रूण हत्या हो चुकी है। इस पर सभी बंटे हुए नजर आ रहे है। अगर इसका कारण तलाश करें तो ज्यादा गहराई में जाने की जरूरत नहीं है, क्योंकि ईसाई और इस्लाम दोनों ही

राजनीतिक साम्राज्यवादी अवधारणा हैं। जिन्हें आस्था का नाम देकर धर्म-भीरु समाज के बीच धर्म के आवरण में लपेटकर आगे बढाया गया। यूरोप के ईसाइयों और अरब के मुसलमानों के बीच सात बड़े युद्ध हुए जिन्हें सलीबी युद्ध, ईसाई धर्म युद्ध, क्रूसेड अथवा क्रूश युद्ध कहा जाता है।

भयंकर रक्तपात हुआ और दोनों ही एक दूसरे पर अपनी-अपनी विचारधारा थोपने में लगे रहे। जब यूरोप ने आधुनिक हथियार बना लिए तब इस्लाम के लोगों ने अपने पांव पीछे खींचे। अब पिछले एक साल पहले इस मत को लेकर फिर चर्चाओं का दौर शुरू हुआ है और इसको लेकर विवाद भी देखने को मिले। मस्जिद अल अजहर के सर्वोच्च इमाम अहमद अल तैय्यब ने इसे साफ नकारते हुए कहा कि वे निश्चित रूप से दो धर्मों, इस्लामी और ईसाई के बीच भाईचारे को भ्रमित करने और दो धर्मों के मिश्रण और विलय को लेकर उठ रही शंकाओं के बारे में बात करना चाहते हैं। उन्होंने कहा ईसाई धर्म, यहूदी धर्म और इस्लाम को एक ही धर्म में मिलाने की इच्छा रखने का आह्वान करने वाले लोग आएंगे और कहेंगे कि सभी बुराइयों से छुटाकारा दिलाएंगे। इसके ज़रिए जिस नए धर्म के निर्माण की बात हो रही है, उसका ना तो कोई रंग है और ना ही उसमें कोई स्वाद या गंध होगा।

यानि इस्लाम के इमाम मोलवी और मौलाना या इन्हें मजहबी सेल्समेन कहें तो ये इसे एक सिरे से खारिज कर रहे हैं। इसका कारण ये भी हो सकता है कि एक तो तेरह सौ साल कत्ले आम मचाकर इस्लाम को खींचकर यहाँ तक लाये। दूसरा आसमानी किताब का रट्टा मारा, अब अचानक दूसरी कोई किताब रटनी पड़ेगी। इस उम्र में याद हो ना हो तो धंधा एकदम चौपट हो जायेगा, तो इनका व्यक्तिगत विरोध जायज है। तीसरा शराब-शबाब जन्नत उसमें किलोले करती हूर यानि सपने बेचने की दुकान ये लोग अचानक कैसे बंद करें? ये तो ऐसे हैं कि किसी पुश्तेनी तम्बाखू बेचने वाले से जाकर कहें कि तू अब कंप्यूटर बेचने का कारोबार कर?

मौलाना ही क्यों अब्राहम मत को लेकर पादरी भी भड़क गये और मिस्र के कॉप्टिक पादरी, हेगोमेन भिक्षु नियामी ने कहा कि अब्राहमी धर्म, धोखे और शोषण की आड़ में एक राजनीतिक आह्वान है. नए धर्म को अस्वीकार करने वालों में वे लोग भी हैं जो इसे वैचारिक तौर पर ठीक मानते हैं लेकिन वे इसे विशुद्ध रूप से राजनीतिक खेमेबंदी के तौर पर देखते हैं, जिसका उद्देश्य विशेष रूप से अरब देशों में इसराइल के साथ संबंधों को सामान्य बनाना और बढ़ाना है. अब इनकी भी अपनी समस्या है। पहले यूरोप के लोगों को जीसस का नशा बेचा अब अचानक ये अगला नशा कैसे बेचें। दूसरा इन ईसाई सेल्समेन ने बड़ी मुश्किल से भारत नेपाल जैसे देशों में जो हालेलुइया का कारोबार खड़ा किया वो तबाह हो जायेगा।

दरअसल अब्राहम शब्द का उपयोग पिछले साल सितंबर में संयुक्त अरब अमीरात और बहरीन द्वारा इसराइल के साथ हालात को सामान्य बनाने के समझौते पर हस्ताक्षर के साथ हुई थी। संयुक्त राज्य अमेरिका और उसके तत्कालीन राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप और उनके सलाहकार जेरेड कुशनर द्वारा प्रायोजित समझौते को अब्राहमी समझौता कहा गया था कि मानवता को रास्ता दिखाने के लिए सभी को एक होने के लिए अब्राहम की आवश्यकता है। इसके तीनों धर्म में शामिल एक समान बातों को लेकर पैगंबर अब्राहम के नाम से धर्म बनाने की कोशिशें शुरू हुई थीं।

लेकिन हमारा सवाल दूसरा भी है कि यूरोप

(शेष पृष्ठ २७ पर)

॥ ओ३म् ॥

दु:खी दिल की पुरदर्द दास्ताँ

—राजेशार्य आट्टा पानीपत-१३२१२२, (मो०: ०९९११२९१३१८)

पतझड़ की पीड़ा बिन मधुमास नहीं बना करते ।
स्वार्थ की कारा में सिमटे आकाश नहीं बना करते ॥

स्याह रातों में तिल-तिल होकर जलना पड़ता है ।
सुख सेजों पर सोकर इतिहास नहीं बना करते ॥

प्रिय पाठकवृन्द ! अपने दुर्व्यसनों से संघर्ष कर आगे बढ़े युवक मुंशीराम आर्यसमाज के सदस्य बने । अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति व मानसिक बल के कारण वे कुछ ही समय में आर्यसमाज के अग्रणी नेता बन गये । ऋषि दयानन्द का सन्देश घर-घर में व जन-जन तक पहुँचाने की उनमें अद्भुत तड़प थी । उसी तड़प ने उनसे वकालत छुड़वा दी व गुरुकुल की स्थापाना हेतु घर-घर से भीख मंगवा दी । यही कारण था कि लोग अपनी श्रद्धा का पात्र मानकर उन्हें 'महात्मा मुंशीराम' कहने लगे । उस गरीबी के समय जब गुरुकुल हेतु तीस हजार रु० संग्रह हो गये तो लाहौर आर्यसमाज वालों ने शानदार जलसा कर महात्मा जी को सम्मानित किया । इससे आर्यसमाज के ईर्ष्यालु राजनैतिक लोगों ने महात्मा जी के विरुद्ध दल बना लिया । ये सभी विरोधी समय-समय पर सभा (आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब) के अधिकारी बनते रहे और महात्मा जी पर आरोप लगाते रहे व उनके काम में रोड़ा भी अटकाते रहे । फिर भी महात्मा जी धैर्यपूर्वक समाज हित के कार्य में समर्पित होकर लगे रहे। पद के मद में भरे ईर्ष्यालु अज्ञानियों ने ऐसे घिनौने आरोप महात्मा जी पर लगाये कि सच्चे आर्यों की आत्मा काँप उठती है । जबकि महात्मा जी पहले ही कॉलेज पार्टी वालों से जूझ रहे थे । डॉ० सत्यपाल ने लिखा है–

"स्वर्गीय लाला लाजपतराय कॉलेज पार्टी के स्तम्भ थे, इसलिए आपने महात्मा जी का जो भर कर विरोध किया। जहाँ-जहाँ महात्मा जी (धन-संग्रह हेतु) पहुँचते थे, लाला जी वहाँ जाकर उनका काम बिगाड़ते थे । व्याख्यानों में महात्मा जी पर हर तरह के हमले करने से सन्तुष्ट न होकर लोगों को चन्दा देने से रोकते थे । मैं तो महात्मा जी का भक्त था इसलिए मुझे लाला जी का यह कार्यक्रम बहुत बुरा मलूम होता था ।....मगर महात्मा मुंशीराम जी कोई साधारण व्यक्ति तो थे नहीं, कॉलेज पार्टी के सब सदस्यों के सब तरह के जोर लगाने पर भी वह चट्टान की तरह खड़े रहे । उन दिनों की बातें यादें करके मुझे बहुत दु:ख होता है । शायद ही कोई इलजाम हो, जो उन पर न लगाया हो ।"

छोटी-छोटी बातों पर मतभेद के कारण विरोधी बने गुरुकुल पक्ष के ईर्ष्यालुओं ने महात्मा जी पर जो आरोप लगाये उनकी एक झलक देखिये–

१. इन (मुंशीराम) के ऊपर किसी उपकार अथवा धर्म के कारण कर्जा (सामाजिक कार्य करते हुए सभा का जो रुपया खर्च हुआ, उसे

महात्मा मुंशीराम पर कर्जा बताया) नहीं हुआ बल्कि एक आलीशान कोठी बनाने लड़कियों की शादी धूमधाम से करने और शान शौकत करने, आय से अधिक खर्च करने के कारण यह हजारों का कर्जा उनके सिर हुआ है। .....और वकालत छोड़ दी। वास्तव में यह त्याग भी केवल दिखावटी ही था। .....गुरु बनने के शौक का भूत सिर पर सवार.....लाला मुंशीराम जी इस बात का भी हकदार नहीं हैं कि वे अपने आपको दयानन्दी कह सकें। हां अगर इनको मायामयी कहा जाये तो सही है।

२. लाला मुंशीराम जी ने १४०००/- रु० से अधिक का गबन किया।

३. गुरुकुल के लिए घर छोड़ना कर्ज से बचने का ढोंग था।

४. वकालत नहीं चली तो त्यागी होने का ढोंग किया।

५. कोई एक व्यक्ति समझता है कि मैं रुपया इकट्ठा करके आया (लाया) हूँ तो वह गलती पर है, यह रुपया सारी सभा ने किया है।

६. मुंशीराम गुरु बनना चाहता है।

लाला देवराज (महात्मा मुंशीराम का साला) के कहने पर महात्मा जी कन्या महाविद्यालय के मैनेजर बन गये। आश्रम की कन्या सुमित्रा के लिए योग्य वर ढूंढने के लिए महात्मा जी को कहा गया। उनहोंने जाति तोड़कर डॉ० सुखदेव को पसन्द किया, तो लाला देवराज नाराज हो गये। वे भी विरोधियों के साथ मिलकर महात्मा जी पर प्रहार करने लगे।

महात्मा जी ने अपनी छोटी बेटी अमृतकला का विवाह (१९०१ ई०) डॉ० सुखदेव से किया तो महात्मा जी के भाई भी नाराज हो गये। पहले वाले विरोधियों ने हमले और तेज कर दिये। महात्मा जी ने लिखा है–

"इस समय मेरा अपने सगे भाईयों से भी एक प्रकार का असम्बन्ध रहा। मुझे धमकाया जाता था कि कड़ा विरोध होगा, जिस प्रकार के शर्मनाक पत्र तथा इबारत उस मौके पर मेरे नाम और मेरी पुत्री के नाम आये, यदि उन्हीं में से एक पत्र को भी दर्ज करूँ तो विरोध का कुछ अंदाजा हो सकता है। लेकिन हमारे लिए वे खत थोड़े से भी रंज और अफसोस के कारण नहीं बने।" (दु:खी दिल की पुरदर्द दासताँ, पृ० २९५)

विरोधियों ने अफवाहें फैलाई कि डॉ० सुखदेव ने अपनी पत्नी (महात्मा जी की बेटी) को बिरादरी के दबाव से अलग कर दिया।

१९०३ में डॉ० सुखदेव व महात्मा जी की दोनों लड़कियों को गुरुकुल में रहना पड़ा, स्वास्थ्य की कमी के कारण, तो लोगों ने अफवाह उड़ाई कि अब गुरुकुल एक ही परिवार के मातहत होने लगा है।

महात्मा जी ने लिखा है–"पं० रामभज दत्त मौसूफ ने खास गलतफहमी कि कारण लाहौर के कुछ गैर आर्यसमाजी अखबारों के द्वारा मेरे विरुद्ध सैकड़ों प्रकार के विरोधी वाकेआत लिखवाये।" (दु:खी दिल.....पृ० ४०५)

जिस छप्पर में महात्मा जी की लड़कियाँ रहती थीं, उसमें बिजली गिरने से आग लग गई। ३००-४०० का सामान जल गया। लड़कियों को बिजली का सदमा लग गया। छोटी लड़की अमृतकला बीमार रहकर चल बसी।

महात्मा जी के विरोधी न तो उन्हें गुरुकुल के खर्च के लिए समुचित धन राशि दे रहे थे और न उनका त्याग पत्र स्वीकार कर रहे थे। १६ अक्तूबर १९०४ को चुनाव के मामले में लाहौर में लाला रलाराम की पार्टी ने आर्यसमाज में जो नीचता की, उससे महात्मा मुंशीराम बहुत व्यथित हुए। उन्होंने लिखा है–"मैंने अन्दर जाकर देखा। राय ठाकुरदत्त ने सख्त जबरदस्ती शुरू कर दी। बाहर लाला छन्जुराम कुछ लोगों को धमका रहे

थे । पण्डित अमरनाथ हर एक के गले पड़ता और लाठियां दिखाता था । लाला मथुरादास जो सभा की मेम्बरी से अलग हो चुके थे, उनका शमला भी हिल रहा था और वे डण्डा लिए दत्त की रक्षा में तत्पर थे । .....जब मैंने देखा बेहद लोग बेईमानियां कर रहे हैं, तो मुझसे न रहा गया। बावजूद इसके वे मक्कारी से एक दूसरे को बेईमान कह रहे थे । मैंने ऊँची आवाज से कह दिया–"आज से मैं पंजाब के सभी आर्यसमाज के प्रबन्ध के मामलों से अलग होता हूँ ।"

"मैं डॉ० परमानन्द के मकान पर उतरा हुआ था । मेरे साथी सब सो गए, मेरी आँखें बन्द न होती थीं । बस टहलने लगा । ११ बजे रात से प्रात: ४ बजे तक टहलता ही रहा । उस समय आर्यसमाज का बीता हुआ इतिहास मेरी आँखों के सामने गुजरा । पूरे चार घंटों तक ऐसी दशा रही कि मानों अब सिर फटा, अब फटा ।" (वही पृ० ४१-४३)

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति ने 'मेरे पिता' में लिखा है–"हम लोग उन दिनों गुरुकुल की सातवीं श्रेणी में पढ़ते थे । .....एक बार हमने अद्भुत बात अनुभव की । पिताजी पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के अधिवेशन में भाग लेने के लिए लाहौर गए जब वे वहाँ से लौटकर घर आये,तब हमने आश्चर्य से देखा कि उन ६-७ दिनों में उनके चेहरे में कोई बड़ा परिवर्तन आ गया है । जब ध्यान से देखा तो समझ में आया कि सप्ताह भर में ही उनके सिर और दाढ़ी मूंछ के आधे बाल सफेद हो गए हैं । जनश्रुति ने उस समय हमें बतलाया कि सभा में प्रधान जी पर बहुत आक्षेप किए गए, जिनके उन्होंने बड़ी सफलता से उत्तर दिये, परन्तु उस रात भर की बैठक का प्रधान जी (पिता जी)के मन और शरीर पर इतना असर हुआ कि उनके बाल सफेद गए ।" (पृ० ९६)

१९०० ई० से यह घृणित खेल चल रहा था। महात्मा जी ने विरोधियों की गोलाबारी का उत्तर देना आवश्यक नहीं समझा । पर इससे उनके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ा रहा था । जब रोकने के कारण अन्दर भरा हुआ क्षोभ (गुस्सा) असहनीय हो गया, तो महात्मा जी ने एक दिन (सम्भवत: अगस्त १९०६) निश्चय कर लिया कि संसार के सामने सत्य का प्रकाश किया जाए । इस संकल्प को लेकर १५-२० दिन के लिए अलग से डेरा जमाकर उन्होंने लगभग ६०० पृष्ठ की एक पुस्तक लिख डाली–'दु:खी दिल की पुरदर्द दास्ताँ' । यह पुस्तक छपने पर आरोपों का यह तूफान शान्त हुआ ।

सामूहिक आक्रमण भले ही रुक गये हों, पर ईर्ष्याभाव के संस्कारों में पलने वाले लोग परछिन्द्रन्वेषी थे । आचार्य दीनानाथ सिद्धान्तालंकार ने लिखा है–"(गुरुकुल में) प्रथम प्रविष्ट होने वाले बच्चों में उन (महात्मा जी) के दोनों सुपुत्र हरिशचन्द्र और इन्द्र थे । गुरुकुल में छात्रावस्था में इन्द्र जी का एक फेफड़ा कमजोर हो गया था। इलाज के लिए उन्हें कई मास तक शिमला के पास सोलन में रखना पड़ा । गुरुकुल विरोधियों ने यह अफवाह उड़ा दी कि मुंशीराम दूसरों के बच्चों को तो गुरुकुल भेजने के लिए प्रचार करते हैं, पर अपने लड़के को वहाँ से निकाल अन्यत्र भेज रहे हैं ।"

इस कुप्रचार से स्वामी जी (तब महात्मा जी) को बहुत दु:ख हुआ । उसी वर्ष (शयद १९११ ई०) गुरुकुल के वार्षिक उत्सव पर अपनी जालन्धर की शानदार कोठी और सद्धर्म प्रचारक पत्र व प्रेस गुरुकुल को दान करने की घोषणा के साथ.....यह भी घोषणा की कि "इन्द्र गुरुकुल में ही पढ़ता है और यहीं पढ़ेगा । यदि वह मर भी गया तो उसकी हड्डियां भी इस भूमि में गाड़ी जायेंगी।" महात्मा जी जब यह घोषणा कर रहे

थे तो उत्सव में उपस्थित अधिकांश नर-नारियों की आँखो से अश्रुधारा बह रही थी ।" (स्वामी श्रद्धानन्द–एक विलक्षण व्यक्तित्व पृ० १०६)

यह सब केवल अतीत का एक काला अध्याय नहीं है, जिस पर समय का पर्दा पड़ चुका है, अपितु आर्यसमाज में कई बार १००-१२५ वर्ष पुराने इतिहास की पुनरावृत्ति होती रही है । सभा-समाजों व गुरुकुलों में छोटे-छोटे पद पाने के लिए राजनैतिक पार्टियों के नेताओं की तरह स्वार्थान्धों ने त्यागी-तपस्वियों पर अपने गुरु भाईयों (दयानन्दियों) पर चरित्र हीनता जैसे दोष लगाने में भी संकोच नहीं किया । मैं छोटा आदमी हूँ। संकुचित दायरे में रहता हूँ । बड़े लोग मुझे क्षमा करेंगे । मैंने अपने समालखा क्षेत्र के एकमात्र वैदिक संस्थान (गुरुकुल डिकाडला) को अपने सामने उजड़ते देखा है और यह भी सत्य है कि उस लहलहाते चमन को उजाड़ने के लिए आर्यसमाज से बाहर की कोई हवा नहीं आई थी। गुरुकुल के नाम हितैषियों के दोषारोपण से व्यथित होकर आचार्य श्री ओमस्वरूप जी ने वार्षिकोत्सव पर घोषणा की थी–"यदि कोई मुझ में दोष साबित कर दे तो मुझे गुरुकुल के इस प्रांगण में जीवित ही जला दिया जाए ।"

दोष सिद्ध करने तो कोई नहीं आया, पर विषैले दुष्प्रचार ने गुरुकुल की अन्त्येष्टि कर दी। आज मैं उसकी स्मृति में आंसू बहा रहा हूँ ।" 'दु:खी दिल की पुरदर्द दास्ताँ' को उद्धृत करने का उद्देश्य यही है कि सामान्य जन किसी के विषय में किए गए दुष्प्रचार को सत्य न मानें और समाज सेवा के क्षेत्र में उतरने वाले आर्य सज्जन महात्मा मुंशीराम के उदात्त चरित्र को सामने रखकर सब बाधाओं पर विजय पा सकें । स्मरण रहे, अपनी कमियों को वही स्वीकार कर सकता है जिसमें स्वामी श्रद्धानन्द की तरह आत्मिक बल हो । वही कह सकता है–"इतिहास के लिखने में मुझे माफ न करना । मैंने बड़ी-बड़ी भूलें की हैं ।"

वही अपने घोर विरोधियों पर राष्ट्र के हितैषियों (लाला लाजपतराय, महात्मा हंसराज आदि) को गले लगा सकता है, क्योंकि वह जानता है कि कोई भी व्यक्ति सदा और सबके लिए बुरा नहीं होता । ❑❑

अश्विनी कुमारों के विचित्र गुण (पृष्ठ ८ का शेष)

हैं, अपितु बिजली से सीधी-सीधी भी फिजियोथैरेपी की जाती है। उसका प्रयोग जानकार ही कर सकता है, इस अर्थ में उदयवीर जी ने **'अश्विनौ'** को **'देवों = विद्वानों'** का चिकित्सक ग्रहण किया है ।

यह व्याख्या चिन्तन योग्य है । **'भूतांश:'** के अर्थ का प्रयोग यहाँ अति सुन्दर है । विद्युत् के व्यापकत्व व संघात द्वारा परमाणु आदि का ग्रहण हो जाने से, **'अश्विन्'** देवता पद भी सार्थक हो जाता है । समृद्धि-विषयक कुछ पुनरुक्ति प्रतीत होती है, परन्तु यह बहुत बड़ा दोष नहीं है । पनबिजली की उपमा दो रत्नों से क्यों दी गई है, यह स्पष्ट नहीं है । कुल मिला के, उदयवीर जी की व्याख्या नूतन है और मननयोग्य है ।

'सृण्येव जर्भरी' मन्त्र अपनी विचित्र यमकात्मक रचना के कारण रमय है । साथ ही, इसके गर्भ में अनेक महत्त्वपूर्ण अर्थ समाए हुए हैं, यह व्याख्याकारों के मतों से स्पष्ट हो जाता है । अश्विन् युगल वाले मन्त्रों में चिकित्सा सम्बन्धी जानकारी निहित है, यह भी ज्ञात होता है । इन मन्त्रों पर अधिक शोध की आवश्यकता है जिससे कि चिकित्सा के नए प्रकार उजागर हो सकें । ऐसे मन्त्रों को निरर्थक मानना तो महामूर्खता है । ❑❑

तीर्थ

–स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी महाराज

प्रश्न–तीर्थ स्नान से पाप का नाश और पुण्य की उत्पत्ति अथवा आत्मा की शुद्धि होती है वा नहीं ?

उत्तर–पाप का नाश पुण्य की उत्पत्ति और आत्मा की शुद्धि का विचार तो पीछे करेंगे, प्रथम तीर्थ क्या है यही सोचना चाहिए ।

प्रश्न–गंङ्गादि जो अनेक पवित्र स्थान हैं वही तीर्थ हैं, इसको तो सब लोग जानते हैं । इसमें सोचने की कौन सी गुह्य बात है ?

उत्तर–इतना तो ठीक है, साधारण लोग गंङ्गादि स्थानों को तीर्थ कहते हैं, किन्तु सोचने की बात यह है, कि ये स्थान वास्तव में तीर्थ हैं वा नहीं ? और धर्म पुस्तकों में इनको तीर्थ लिखा भी है वा नहीं ?

प्रश्न–क्या लोग बिना लिखे ही कहते हैं ? पुराणों में, महाभारत में तीर्थ का वर्णन है । वेद में तीर्थ शब्द आता है, अतः यह निर्विवाद विषय है। इस पर सोचने की आवश्यकता नहीं है । हां पाप नाश और पुण्य उत्पत्ति की बात कहो ।

उत्तर–वह भी कहेंगे, किन्तु प्रथम तो तीर्थ ही चिन्तनीय है, क्योंकि तीर्थ शब्द के अर्थ हैं, जिसके द्वारा लोग तर जायें । क्या गंङ्गादि स्नान से वा गंङ्गा से ही लोग तर जाते हैं ? देखा तो यह जाता है, यदि किसी को तैरना न आता हो, वह किसी समय गंङ्गा के गहरे जल में पड़ जाए तो डूब जाता है । और गंङ्गा स्नान से भी पाप का नाश और पुण्य की उत्पत्ति प्रतीत नहीं होती। इसलिए न तो यह तीर्थ है और न ही गंङ्गा आदि स्नान से पाप का नाश और पुण्य की उत्पत्ति होती है । इसी कारण मनुस्मृति में मनु जी ने साफ लिखा है ।

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥

मनु ५।१०९

जल के स्नान से शरीर शुद्ध होता है, मन सत्य बोलने, सत्य व्यवहार से शुद्ध होता है, विद्या और तप से आत्मा शुद्ध होता है, बुद्धि यथार्थ ज्ञान से शुद्ध होती है ।

मनु जी ने इस श्लोक में स्नान से शरीर के बाह्य अवयवों की शुद्धि लिखी है, आत्मा की शुद्धि के कारण विद्या और तप ही बताये हैं । आप गंङ्गादि स्नान से आत्मा की शुद्धि कहते हैं, सो बात ठीक नहीं है । जो मनुस्मृति में लिखा है, वही युक्तियुक्त और ठीक है ।

आपने कहा था कि महाभारत में तीर्थ का वर्णन है सो महाभारत में ऐसा लेख है, जब महाभारत युद्ध समाप्त हो गया, भीष्म पितामह जी शरशय्या पर विराजमान थे । उस समय श्रीकृष्ण जी की सम्मति से पाण्डव उनकी सेवा में गये, वहाँ जाकर युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह जी से अनेक विषयों के प्रश्न पूछे थे, उन प्रश्नों के भीष्म पितामह जी ने जो उत्तर दिये थे, वह महाभारत के अनुशासन पर्व में लिखे हुए हैं । वहाँ तीर्थ विषयक भी एक प्रश्न का उस समय भीष्म जी ने जो उत्तर दिया था, उसमें से कुछ श्लोक यहाँ लिखते हैं, जिससे महाभारत में तीर्थ विषयक सिद्धान्त का पता लग जाएगा ।

युधिष्ठिर उवाच–

यद्वरं सर्वतीर्थानां तन्मे ब्रूहि पितामह ।
यत्र चैव परं शौचं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥

युधिष्ठिर जी ने कहा–हे पितामह सब तीर्थों में जो श्रेष्ठ है और जो उत्तम शौच, अर्थात् पवित्रता होती है, वह आप मुझे बतलायें ।

भीष्म उवाच–

सर्वाणि खलु तीर्थानि गुणवन्ति मनीषिणाम्।
यत्तु तीर्थं च शौचं च तन्मे शृणु समाहितः॥२॥

सब तीर्थ मनीषियों के लिए गुणवान् हैं, उनमें जो पवित्र तीर्थ है। वह समाहित होकर सुन।

अगाधे विमले शुद्धे सत्यतोये धृतिहदे।
स्नातव्यं मानसे तीर्थे सत्यमाश्रित्य शाश्वतम्॥३॥

तीर्थं शौचमनर्थित्वमार्जवं सत्त्वमार्दवम् ।
अहिंसा सर्वभूतानामानृशंस्यं दमः शमः ॥४॥

निर्ममा निरहङ्कारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहा ।
शुचयस्तीर्थभूतास्ते ये भैक्ष्यमुपभुञ्जते ॥५॥

गम्भीर, दोष रहित, पवित्र सत्यरूपी जल और धैर्य रूपी तालाब युक्त मानस तीर्थ में शाश्वत सत्य का अवलम्बन करके स्नान करना चाहिए। (अनर्थत्वं) किसी को अर्थी न होना, (आर्जवं) सरलता, (मार्दवं) नरम चित्त, सब जीवों की अहिंसा, अनृशंसता और शम (मन को वश में रखना) दम (इन्द्रिय दमन करना) ही पवित्र तीर्थ हैं ।

जो लोग ममतारहित, निरहंकारी, अर्थात् अहंकार शून्य, सुख, दुःख, शीत, आतप, आदि द्वन्द्व सहन करने वाले और निष्परिग्रह, अर्थात् संग्रह रहित, दानादि के लालच से रहित हैं और जो लोग भिक्षा धन से जीवन व्यतीत करने वाले संन्यासी हैं, वे ही पवित्र तीर्थ रूप हैं ।

इस प्रकरण में भीष्म जी ने आपके कहे गङ्गादि स्नान को कहीं तीर्थ नहीं बताया है । उसके विपरीत सत्य, धैर्य, निर्लोभता, सरलता, नम्र चित्त, अहिंसा, दया, शम, दम, ममतारहित, अहंकार वर्जित, द्वन्द्वों के सहन करने वाले तपस्वी और भिक्षा से निर्वाह करने वालों को ही तीर्थ बताया है । इससे सिद्ध है कि वास्तव में यही सच्चे तीर्थ हैं । जो मनुष्य को पवित्र करने वाले हैं, यही वे तीर्थ हैं, जिनके सेवन से मनुष्य संसार-सागर से तर जाता है, गङ्गादि तीर्थ तो स्वार्थी लोगों ने साधारण प्रजा को ठगने के लिये बना लिये हैं और ये गङ्गादि तीर्थ तारने वाले तो किसी अवस्था में भी नहीं होते हैं ।

उसी प्रकरण में स्नान के विषय में भी भीष्म जी ने कहा है । यथा–

नोदकक्लिन्नगात्रस्तु स्नात इत्यभिधीयते ।
स स्नातो यो दमस्नातः स बाह्याभ्यान्तरःशुचिः॥

मनसा च प्रदीप्तेन ब्रह्मज्ञानजलेन च ।
स्नाति यो मानसे तीर्थे तत्स्नानं तत्त्वदर्शिनाम्॥

(महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय १०८)

जल से स्नान करने वाले मनुष्य को स्नान (स्नान किया हुआ) नहीं कहते हैं । जो लोग दमस्नात हैं उन्हीं ने स्नान किया है ओर वे ही बाहर तथा भीतर पवित्र होते हैं ।

ज्ञान से निर्मल किये हुए मन और ब्रह्म ज्ञान के जल के सहारे जो लोग मानस तीर्थों में स्नान करते हैं, उनका नहाना ही स्नान है । तत्त्वदर्शियों को ऐसा ही स्नान अभिमत है ।

यहाँ भीष्म पितामह जी ने जल स्नान से आत्म-शुद्धि का सर्वथा ही निषेध किया है, अतः जलादि के स्नान से मनु जी के लिखे अनुसार केवल शरीर की शुद्धि होती है । आत्मशुद्धि के लिए जल स्नान का कोई प्रयोजन नहीं है ।

प्रश्न–यदि महाभारत में इस प्रकार निषेध है तो लोग गङ्गादि तीर्थों में स्नान करने क्यों आते हैं? और पण्डे तीर्थों पर रहते हैं और वे बाहर जाकर तीर्थों का प्रचार भी करते हैं । क्या वे महाभारत नहीं पढ़े हैं ?

उत्तर–महाभारत तो वे पढ़े हैं, परन्तु उन्हें तीर्थ स्नान करने वालों को तीर्थ का महात्म्य बताकर बहकाना है और उनका धन हरण करके अपनी जीविका चलानी है । और इसलिए वे तो स्वार्थी हैं, उनका कथन प्रमाण नहीं है ।

प्रश्न–किसी आचार्य ने तीर्थ विषयक कुछ लिखा है ?

उत्तर–हां लिखा है ।

प्रश्न–वह बतलाओ, क्या लिखा है ?

उत्तर–महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में तीर्थ विषयक निम्न पाठ लिखा है । और ये तीर्थ (प्रथम भारतवर्ष में) नहीं थे, जब जैनियों ने गिरनार, पालिटाना शिखर शत्रुञ्जय और आबू आदि तीर्थ बनाये । उनके अनुकूल इन लोगों ने भी बना लिये। जो कोई इनके आरम्भ की परीक्षा करना चाहे, वे पण्डों की पुरानी से पुरानी बही और तांबे के पत्र आदि लेख देखें तो निश्चय हो जाएगा कि ये सब तीर्थ पांच सौ अथवा एक सहस्र वर्ष से इधर ही बने हैं, सहस्र वर्ष से उधर का लेख किसी के पास नहीं निकलता, इससे आधुनिक हैं ।

प्रश्न–जो जो तीर्थ का महात्म्य, अर्थात्– **'अन्य क्षेत्रे कृतं पापं काशी क्षेत्रे विनश्यति।'** इत्यादि बातें हैं, वे सच्ची हैं वा नहीं ?

उत्तर–नहीं, क्योंकि यदि पाप छूट जाते हों तो दरिद्रों को धन, राजपाट, अन्धों को आँखें मिल जातीं, कोढ़ियों का कोढ़ आदि रोग छूट जाता, ऐसा नहीं होता, इसलिए पाप वा पुण्य किसी का नहीं छूटता ।

प्रश्न–

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥

जो सैकड़ों सहस्त्रों कोस दूर से भी गंगा-गंगा कहे तो उसके पाप नष्ट होकर वह विष्णु लोक, अर्थात् बैकुण्ठ को जाता है । क्या झूठ हो जाएगा?

उत्तर–मिथ्या होने में क्या शंका ? क्योंकि गंङ्गा .....नाम स्मरण से पाप कभी नहीं छूटता, जो छूटे तो दु:खी कोई न रहे ओर पाप करने से कोई भी न डरे । वैसे आजकल पोप लीला में पाप बढ़कर हो रहे हैं । मूढ़ों को विश्वास है कि हम.....तीर्थ यात्रा करेंगे तो पापों को निवृत्ति हो जाएगी । इसी विश्वास पर पाप करके इस लोक और परलोक का नाश करते हैं, परन्तु किया हुआ पाप भोगना ही पड़ता है ।

प्रश्न–तो कोई तीर्थ.....सत्य है वा नहीं ?

उत्तर–है, वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना, पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का संग, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट, सत्य भाषण, सत्य का मानना, सत्य करना, ब्रह्मचर्य, आचार्य, अतिथि, माता पिता की सेवा करना, परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्मयुक्त, पुरुषार्थ, ज्ञान, विज्ञान आदि शुभ गुण, कर्म दु:खों से तारने वाले होने से तीर्थ हैं। और जो जल स्थलमय हैं वे तीर्थ कभी नहीं हो सकते, क्योंकि– **'जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि'** मनुष्य जिसे करके दु:खों से तरें उनका नाम तीर्थ है । जल स्थल तराने वाले नहीं, किन्तु डुबोकर मारने वाले हैं ।

पूर्वपक्षी–महर्षि दयानन्द जी का लेख सुनकर तो अब पूर-पूरा निश्चय हो गया कि गङ्गादि तीर्थ केवल पोपों के बनाये हुए हैं । आगे को मैं भी जैसा महर्षि ने उपदेश किया है, वैसा करने का यत्न करूंगा।(वेदपथ से साभार)

❑❑

साभार–**राजेन्द्र जिज्ञासु जी**
(पुस्तक : वैदिक विचारधारा)
प्रस्तुति–अवत्सार

पुनर्जन्मवाद !

लेखक : स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

आजकल सर्वसाधारण में आर्यसमाज के कारण धर्म की चर्चा फिर होने लगी है। धर्म सम्बन्धी सिद्धान्तों के विवेचन की उत्कण्ठा दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है। जहाँ दो-चार शिक्षित मनुष्य बैठते है वहाँ कुछ न कुछ धर्म चर्चा अवश्य होती है, परन्तु वर्तमान समय में पुनर्जन्म के सिद्धान्त पर बहुत से मनुष्यों को वाद-विवाद करते पाकर तथा ईसाई एवं मुसलमानों को बहुत ही तुच्छ युक्तियों से इस सिद्धान्त का खण्डन करते देखकर मुझे आवश्यकता प्रतीत हुई कि मैं भी इस विषय पर एक छोटा सा लेख लिखूं। यद्यपि पण्डित लेखराम जी ने इस विषय पर एक भारी पुस्तक लिखी है, परन्तु अधिक मूल्य होने के कारण सर्वसाधारण में उसका प्रचार बहुत ही थोड़ा हो सकता है। इसी विचार को अपने सन्मुख रखते हुए मैंने इस विषय पर लिखना उचित समझा। आशा है कि मेरा श्रम व्ययर्थ नहीं जाएगा, क्योंकि जनता ने मेरे पिछले लेखों का आशातीत आदर किया है।

जितने मत कर्मों का फल मानते हैं, उनमें से कोई तो सजाए-आमाल (कर्मफल-भोग) के लिए कयामत का दिन नियत करते हैं और कोई पुनर्जन्म द्वारा अर्थात् एक शरीर के त्यागने पर दूसरे शरीर के द्वारा कर्मफल-भोग की रीति मानते हैं। अब दोनों में कौन-सा सिद्धान्त तर्कसिद्ध हो सकता है इस पर आज विचार करना है, परन्तु इसके पूर्व कि हम इस विषय पर विचार करना आरम्भ करें, प्रतयेक मनुष्य के लिए यह भी जानना आवश्यक है कि 'दण्ड का क्या अभिप्राय होता है ?' जहाँ तक खोज से पता चला है, यही सिद्ध होता है कि दण्ड का अभिप्राय बदला लेना नहीं सुधार करना है, क्योंकि हम देखते हैं कि यदि एक मनुष्य चोरी करता है या किसी को मारता है तो इसके बदले उसे कारागार भेज देते हैं। क्या कारागार में जाकर अपराधी दुष्कर्म का बदला पाता है? नहीं ! यदि बदला मिलता तो कारागार में उससे रुपये माँगे जाते, क्योंकि उसने चोरी से उठाये थे, या उसको भी मारा जाता, परन्तु वहाँ ये दोनों बातें नहीं होतीं, किन्तु हम देखते हैं कि उसे मारने के स्थान पर उसके हाथों में हथकड़ी लगा दी जाती है, क्योंकि वह हाथों से उठाता था, पांवों में बेड़ी डाल दी जाती है, क्योंकि पांवो की सहायता से लेकर भागा। सुतरां जिन दो इन्द्रियों से चोरी की टेव डाली थी उनके अभ्यास को मिटाने के लिए उनकी शक्तियों को कुछ दिन के लिए निकम्मा कर दिया, जिससे कि वह उस बात को भूल जाए और कारागार से निकलकर पुनः ऐसे अपराध को न करे। यद्यपि हम देखते हैं कि बन्दी कारागार से लौटकर भी चोरी करते हैं, परन्तु उसका कारण केवल यह है कि प्रथम तो मनुष्यकृत सरकार की यह शक्ति नहीं कि बुराई की जड़ मन को अधीन बना सके, क्योंकि सर्व कार्य मन द्वारा ही होते हैं। यद्यपि गवर्नमेण्ट ने हाथ और पांव को रोककर उसको कायिक पापों से रोक दिया, परन्तु पाप को स्मरण रखनेवाली शक्ति उसके मन को न रोक सकने के कारण अर्थ सिद्ध नहीं हुआ। यदि सरकार में यह शक्ति होती कि किसी प्रकार वह मन को अधीन बना सकती तो कोई भी बन्दी कारागार से निकलकर चोरी करता ? एक बात और भी ध्यान देने योग्य है कि जितने मनुष्य चोर

होते हैं वे जितने कर्म करते हैं उनके पाप पुण्य का उत्तरदाता लोग होते हैं ।

जैसे एक मनुष्य एक रुपया नित्य कमाता है ,तथा चार आना नित्य व्यय करता है तो बारह आना नित्य बचा लेता है । यदि चार आना नित्य कमाता है तथा एक रुपया नित्य व्यय करता है तो बारह आना नित्य ऋणी हो जाता है, परन्तु कारागार में सर्वथा इसके विपरीत दशा है–वहाँ न तो कोई बचा सकता है, न भविष्य के लिए एकत्र कर सकता है और न ही ऋणी हो सकता है । मानों वह ऐसी दशा है जिसमें आगे के लिए हानि-लाभ करने की कोई शक्ति नहीं । इसके अतिरिक्त यह भी जानने योग्य है कि शरीर और आत्मा का सम्बन्ध मकान और मकीन (निवासी और स्वामी) का है । आत्मा शरीर में रहकर तो कर्मफल-भोग करता है और आगामी जीवन के लिए प्रबन्ध करता है । जिस प्रकार कोई जीव बिना घर के रह नहीं सकता और न ही काम कर सकता है, इसी प्रकार आत्मा भी बिना शरीर के कर्मफल नहीं भोग सकती । संसार में दो प्रकार के घर हैं–

(१) वे घर जिनमें रहकर मनुष्य हानि-लाभ उठाते हैं । जैसे कोई कंगाल तो अपने कर्मों से धनी हो जाता है और कोई धनवान् अपनी मूर्खता एवं दुराचार के कारण कंगाल बन जाता है; और

(२) कारागार जिसमें केवल कर्मफल भोगते हैं, भविष्य के लिए कोई प्रबन्ध नहीं कर सकते, उसका समस्त सम्बन्ध केवल वर्तमान समय से होता है । इसी प्रकार परमात्मा ने भी जीवों के लिए दो ही प्रकार के घर बनाये हैं–

(१) वे जिनमें बैठकर जीव भले-बुरे कर्म कर सकता है और उससे अपने भविष्य का बिगाड़ या सुधार कर सकता है और हर समय कर्म करने में स्वतन्त्र रहता है । इसे कर्तव्य-योनि कहते हैं अर्थात् ऐसा शरीर जिसमें कि मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है, और

(२) दूसरे, जो कारागार की भांति है जो केवल बुराई की बान (स्वभाव) को छुड़ाने के लिए तथा कर्मफल भोगने के लिए नियत हैं,जिनमें बैठकर जीव भविष्य के लिए कोई प्रबन्ध नहीं कर सकता, उसे भोक्तव्य योनि कहते हैं । अब जिस प्रकार स्वतन्त्र मनुष्य पाप करके कारागार में जाते हैं और बन्दी बनाकर दण्ड देने का अभिप्राय सिद्ध हो सकता है, अन्यथा ऐसी दशा में दण्ड देना जबकि उसे पता ही नहीं कि उसने कौन-सा बुरा कर्म किया था जिसके अपराध में यह दण्ड मिला, न तो कुछ लाभकारी हो सकता है और न ही यह न्याय कहा जा सकता है। इसका उत्तर यह है कि दण्ड का अभिप्राय उस कुटेव को भुला देना है कि जिसका दण्ड उसे भोगना है यदि उसे पाप का स्मरण है तो उसके करने की रीतियां भी स्मृति में होंगी । सुतरां जिस टेव को छुड़ाने के अर्थ दण्ड दिया गया था वह तनिक भी न छूटेगी और दण्ड का अभिप्राय सिद्ध न होगा।

कतिपय मनुष्यों का यह आक्षेप है कि जिस प्रकार संसारी गवर्नमेण्ट प्रत्येक अपराधी को उसका अपराध बताकर उसे दण्ड देती है, इसी प्रकार परमेश्वर को भी अपराध बताकर दण्ड देना उचित है, जिससे कि भविष्य में अपराधी उस पाप से बचे । इसका उत्तर यह है कि मनुष्यकृत गवर्नमेण्ट अल्पज्ञ है और वह किसी अपराध को बिना साक्षी के सिद्ध नहीं कर सकती, अत: वह प्रथम अपराध लगाकर उसके सम्बन्ध में साक्षी आदि द्वारा अपना निश्चय दृढ़ करती है; और दूसरे गवर्नमेण्ट का दण्ड बहुधा मेट भी दिया जाता है, क्योंकि बड़ा न्यायालय छोटे न्यायालय के अन्वेषण को सत्य नहीं समझता; अत: अपराधी को अपना निर्दोष होना सिद्ध करने के लिए उसके अपराध की सूचना दी जाती है, परन्तु परमेश्वर का न्यायालय सर्वज्ञ है, अत: न तो उसे साक्षियों

की आवश्यकता है और न ही उसकी अपील (अभ्यर्थना) हो सकती है, क्योंकि उसमें भूल नहीं होती । अपील व पुनर्निरीक्षण केवल भूल को दूर करने के लिए की जाती है । यही कारण है कि मनुष्यकृत न्यायालय के बन्दी कारागार से मुक्त हाकर भी उन्हीं पापों को करते हैं जिनके कारण वे कारागार गये थे, क्योंकि जिन पापों की आदत छुड़ाने के लिए गवर्नमेण्ट ने उन्हें कारागार में भेजा था उनकी स्मृति मन में विद्यमान है। यद्यपि हाथों में उसकी टेव न्यून हो गई, परन्तु मन में रहने के कारण पूर्णतया नष्ट नहीं हुई और मन को बन्दी बनाना सांसारिक गवर्नमेण्ट की शक्ति से बाहर है ।

फलत: जहाँ वह मन में पाप की स्मृति रखता है और उसके करने की रीति की भी स्मृति रखता है, वहाँ पाप के दण्ड की भी स्मृति रखता है, परन्तु परमात्मा ऐसी अपूर्ण शक्ति नहीं । उसके कारागार अर्थात् पशुयोनि में जाते ही सबसे प्रथम मन को अधीन किया जाता है और मन के अधीन हो जाने से मन का सम्पूर्ण काम अर्थात् पुरानी बातों की स्मृति तथा उसके फलस्वरूप आगे के लिए इच्छा करना पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं, अत: जब मन कोई कार्य करता तो आगे और पीछे का वृत्तान्त स्मरण रखना और सोचना किस प्रकार हो सकता है । जो बात पुनर्जन्म के आशय को पूरा करने वाली है उसको पुनर्जन्म के विरोध में रखना, पुनर्जन्म को न मानना उचित नहीं । समृति मन का काम है, जीवात्मा का नहीं, अत: जिन अवस्थाओं में मन का जीव के साथ सम्बन्ध नही होता उस समय कुछ भी स्मरण नही रहता, जिसकी साक्षी सुषुप्ति अवस्था है । यदि सुषुप्ति अवस्था में जब मन कार्य नहीं करता कोई स्मृति रहती तो आक्षेप ठीक हो सकता था ।

बहुत से मनुष्य यह आक्षेप करते हैं कि यदि पशुयोनि में स्मृति न रहे तो मनुष्य-शरीर में आने से तो पुरानी बातें याद आनी चाहिए । उसका स्पष्ट उत्तर यह है कि पशुयोनि में मन की स्मरण-शक्ति के निकम्मा रहने के कारण उसकी ऐसी दशा हो जाती है कि बिना ठीक संस्कार हुए स्मरण रखने तथा समझने योग्य नहीं रहती। इसका प्रमाण उन बालकों की शिक्षा से मिलता है जो पशुयोनि से नर योनि में आये हैं, जैसे एक कारीगर जब अधिक समय तक काम न करे तो उसके हाथ की सफाई बिगड़ जाती है और थोड़े समय तक वह काम करने से फिर प्रकट हो जाती है, इसी प्रकार मन की स्मरण-शक्ति मनुष्य जन्म पाकर थोड़े दिनों में इस योग्य होती है कि वे स्मरण रख सकें। इसके अतिरिक्त मन में भी उस वस्तु के, जिसके साथ उसका सम्बन्ध होता है, संस्कार पड़ते जाते हैं । जो वस्तु निकल जाती है उसके संस्कार दब जाते हैं, और जो वस्तु सम्मुख रहती है उसके संस्कार बने रहते हैं । इस प्रकार गई हुई बातों को स्मरण करने के लिए चित्त की वृत्तियों को एकाग्र करके नवीन विचारों से हटाकर प्राचीन विचारों को जानना पड़ता है । सुतरां जो मनुष्य योग के द्वारा प्राचीन विचारों को जानना चाहते हैं वे जान सकते हैं । उदाहरणार्थ एक कोठे में दो सौ मन गेंहू डाल दिए हैं, तत्पश्चात् छ: सौ मन चना डाल दिया । अब प्रकट में इन आँखों से गेंहू नहीं देख सकते, जब तक कि उसके ऊपर से चनों को न हटाया जाए । इसी प्रकार प्राचीन संस्कारों को जानने के लिए मन को नवीन संस्कारों से पृथक् करने की आवश्यकता है, जिसका साधन सिवाय योग के दूसरा नहीं । योगिजन अपने पिछले हाल और जन्मों को भलीभांति जान सकते हैं, परन्तु सर्वसाधारण नहीं जान सकते, इसीलिए योगिराज कृष्ण ने अर्जुन को गीता में कहा था–

बहूनि में व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन !
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ॥

–गीता ४।५

हे अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं जिनको तू योगविधि न जानने के कारण नहीं जान सकता और मैं जान सकता हूँ ।

केवल हिन्दुओं में ही इसका प्रमाण नहीं मिलता, किन्तु मुसलमान योगी भी जिन्होंने ईश्वरोपासना द्वारा चित्त की वृत्तियों को एकाग्र कर लिया है इस बात को मानते हैं कि हमारे बहुत से जन्म हो चुके हैं । देखो मौलाना रूम लिखते हैं–

इमचु सब्जा बारहा रोईदः ऐम ।
हफ्त स द हफ्ताद कालिब दीदः ऐम ॥

अर्थात् सात सौ सत्तर बार जन्म लिया है ।

कतिपय लोग यह आक्षेप करते हैं कि पाप तो मनुष्य ने किया और दण्ड भोगें पशु, यह तो अन्याय है ! परन्तु उनका यह विचार नितान्त असत्य है, क्योंकि मनुष्य-शरीर तथा पशुयोनि केवल जीवात्मा के कर्मानुसार आनन्द और दुःख भोग के लिए दो घर हैं । संसार में ही देखा जाता है कि पाप करते हैं घर में और दण्ड भोगते हैं कारागार में, परन्तु कोई इसे अन्याय नहीं कहता, क्योंकि कारागार या घर से कोई सम्बन्ध नहीं, सम्बन्ध केवल मनुष्य का है । इसी प्रकार मनुष्य शरीर या पशुयोनि का कर्म और दण्ड से कोई सम्बन्ध नहीं, किन्तु दण्ड केवल जीवात्मा को कर्म करने में स्वतन्त्रता का न होना है । कतिपय मनुष्य जीव को शरीर से पृथक् नहीं मानते जो कि स्पष्ट भूल है, क्योंकि शरीर तत्त्वों से बना हुआ है जो नाश होकर अपने स्वरूप में मिल जाते हैं, परन्तु जीव प्रकृति का गुण या गुणी नहीं, क्योंकि जीवात्मा का गुण-ज्ञान प्रकृति में नहीं । यदि ज्ञान को भी प्रकृति का गुण मान लिया जाए तो मृत्यु तथा सुषुप्ति का होना असम्भव होगा, क्योंकि प्राकृतिक शरीर से ज्ञान जो उसका गुण है किसी अवस्था में पृथक् नहीं हो सकता । एक इस्लाम नगरी साहिब रघुबर शरण नामी ने इसी पुस्तक 'तरदीदे तनासुख' में यह लिख दिया कि ज्ञान बुद्धि का गुण है, क्योंकि जो काम ज्ञान से सम्बन्ध रखते हैं वह बुद्धि से होते हैं । अब प्रश्न उठता है कि बुद्धि प्राकृतिक है या अप्राकृतिक? यदि कहो कि प्राकृतिक है तो ज्ञान प्रकृति के गुणों में सम्मिलित हो जाएगा, और जब ज्ञान प्रकृति के गुणों में सम्मिलित हो जाएगा, और जब ज्ञान प्रकृति में होगा तो कोई वस्तु जड़ नहीं हो सकती, इस प्रकार जड़ और चेतन का भेद उड़ जाएगा, क्योंकि संसार की प्रत्येक वस्तु प्रकृति से बनी हुई है ।

अब फिर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि ज्ञान मूलतत्त्व का गुण है या मिश्रित का ? यदि मूलतत्त्व का है तो अग्नि आदि में भी ज्ञान का पता नहीं मिलती । यदि कहो कि मिश्रित में होता है तो नितान्त असत्य है, क्योंकि जो गुण मूलतत्त्व के भाग में न हो वह मिश्रित में कैसे आ जाएगा, जैसे बीस उष्ण औषधियों को पिलाने से कभी शीतलता नहीं हो सकती जब तक औषधि शीतल न हो, क्योंकि समस्त विद्वान् और विज्ञानवेत्ता इस बात से सहमत हैं कि प्रकृति में गति नहीं, यदि प्रकृति में गति होती तो जिस गेंद को हम फेंकते हैं वह लगातार चलती जाती, परन्तु होता इसके विरुद्ध है, अर्थात् जहाँ तक हमारी शक्ति से गेंद चल सकी चली गई और आगे जाकर रुक गई, अतः ज्ञान और गति प्रकृति के गुण नहीं हैं । यदि बुद्धि को अप्राकृतिक माना जाए तो वह जीवात्मा का दूसरा नाम होगा । कई लोग पुनर्जन्म के विरुद्ध यह युक्ति देते हैं कि संसार में मनुष्य से प्रथम पशु बने हैं, परन्तु यह बात भी अनभिज्ञता का प्रमाण है, क्योंकि जिस प्रकार रात्रि दिवस का क्रम है कि रात्रि के पीछे दिवस तथा दिवस के पीछे रात्रि होती है और जिस भांति कृष्णपक्ष के पीछे शुक्लपक्ष और शुक्लपक्ष के पश्चात् कृष्णपक्ष होता है और जैसे दक्षिणायण के पश्चात् उत्तरायण तथा उत्तरायण के पीछे दक्षिणायण होता है, यही

क्रम प्रलयकाल तक पहुँच जाता है एवं जिस प्रकार मनुष्य प्रात:काल उठकर पिछले दिन के लेन-देन के अनुसार कार्यारम्भ कर देते हैं, इसी प्रकार सर्वदा सृष्टि के आरम्भ में पिछली सृष्टि के आरम्भ में पिछली सृष्टि के क्रमानुसार पशु तथा मनुष्यादि जन्म लेते हैं। यह भूल तो केवल वही मनुष्य करते हैं जिनके धर्मग्रन्थ १३००, १९००, २६०० या ३४०० वर्ष पुराने हैं, क्योंकि इनके पूर्व का वृत्तान्त उन्हें ज्ञात नहीं, परन्तु कुरान में भी कुछ पता पुनर्जन्म का चलता है (देखो सूर ए बकर पृष्ठ ७, मितरज्जिम कुरान छापा नवलकिशोर कानपुर, पञ्चम संस्करण, पंक्ति १३)

तुम मुर्दे (मृतक) थे, जिलाया तुमको, फिर मुर्दा (मृतक) करेगा और फिर जिलाएगा, फिर तर्फ उनके आगे फिर जाओगे।

पाठकगण ! पहले मृतक कहने से स्पष्ट विदित होता है वह कभी मरे थे, अब फिर जन्मे, फिर मरेंगे और फिर जन्म लेंगे। हमारे कतिपय मित्र इसका अर्थ करते हैं कि ईश्वर ने प्रथम अभाव से भाव किया। अभाव का नाम मृतक होता है और जन्म लेना भाव का नाम है, अब फिर अभाव कर देगा और फिर भाव करेगा। कतिपिय मनुष्य इसे कयामत (प्रलय) के सम्बन्ध में बताते हैं, अर्थात् प्रथम ईश्वर ने मनुष्य को मृतक से जीवित किया, इसके पीछे मर जाएंगे और कयामत के दिन फिर जीवित होंगे, परन्तु ये दोनों बातें टिप्पणी मात्र हैं, और वास्तविक अर्थ के नितान्त विरुद्ध हैं, क्योंकि मृत्यु शरीर और जीवात्मा का वियोग है तो मानो पहले शरीर और जीवात्मा पृथक् थे। खुदा ने उनको मिलाकर जीवित किया, फिर पृथक् करेगा और फिर जीवित करेगा, यावत् वे खुदा की ओर न फिर जावें अर्थात् मुक्त न हों जावें।

कतिपय मुसलमानों का यह आक्षेप होगा कि मनुष्य के जीवात्मा का पशु-शरीर में प्रवेश करना पुनर्जन्म है और इसे इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता, परन्तु कुरान शरीफ में यह भी दिखाया है कि एक कौम (जाति) पर नाराज होकर खुदा ने आज्ञा दी कि वे सूअर और बन्दर हो जावें।

अब बहुत से लोग कहते हैं कि वे जीते जी बन्दर और सूअर हो गये। प्रथम तो यह बात ही असत्य है, परन्तु इस असम्भव को भी सम्भव मानकर हम कह सकते हैं कि मनुष्य-जीवात्मा का कर्मफल-भोग के लिए पशुयोनि में आना कुरान से सिद्ध है।

संसार में कोई मनुष्य पूर्व जन्म को माने बिना ईश्वर के गुणों को पूर्णतया सिद्ध नहीं कर सकता। जितने आक्षेप पुनर्जन्म के विरोधियों की ओर से किये जाते हैं, वे केवल अनभिज्ञता के कारण होते हैं, अन्यथा कोई भी बुद्धिमान् पुनर्जन्म पर आक्षेप नहीं कर सकता।

पुनर्जन्म के समर्थन में प्रकृति के नियम में पग-पग पर उदाहरण विद्यमान हैं ,परन्तु कतिपय मनुष्य शरीर को जीवात्मा का निवास स्थान नहीं बताते, किन्तु जीव को शरीर का सार मानते हैं। इसी प्रकार और भूलें हैं जिसके कारण वे जीवात्मा का दूसरे शरीर में जाना उसके रूप का बदलना मानते हैं। समस्त झंझट जो पुनर्जन्म के विरुद्ध फैला हुआ है, वह केवल प्रकृति और जीव को अनादि न मानने के कारण उत्पन्न हुआ है, अत: प्रत्येक मनुष्य को प्रकृति और जीवात्मा के अनादित्व पर हमारे लेख 'प्रकृति का प्राचीनत्व (माद्दे की कदामत) और जीवात्मा के अस्तित्व में प्रमाण देखना चाहिए। यदि इस पर भी शान्ति न हो तो 'रद्द-तनासुख' का उत्तर जो पादरी गुलाम मसीह के उत्तर में लिखा गया है देखना उचित है। ❑❑

[स्रोत : पुस्तक दर्शनान्द ग्रन्थ संग्रह]

प्रस्तुति–अवत्सार

आप भी कहीं भेड़चाल के शिकार तो नहीं ?

–प्रस्तुति : दिनेश कु० शास्त्री (मो०–९६५०५२२७७८)

कोई एक चोरी करते पकड़ा गया था । न्यायाधीश ने उसकी नाक काटने का दण्ड दिया। जब उसकी नाक काटी गई तब वह धूर्त नचने गाने और हंसने लगा । लोगों ने पूछा कि तू क्यों हंसता है? उसने कहा कुछ कहने की बात नहीं है । लोगों ने पूछा–ऐसी कौन सी बात है? उसने कहा बड़ी भारी आश्चर्य कि बात है, हमने ऐसी कभी नहीं देखी । लोगों ने कहा–कहो ! क्या बात है? उसने कहा मेरे सामने साक्षात् चतुर्भुज नारायण खड़े हैं। मैं देखकर बड़ा प्रसन्न होकर नाचता गाता अपने भाग्य को धन्यवाद देता हूँ कि मैं नारायण का साक्षात् दर्शन कर रहा हूँ ।

लोगों ने कहा हम को दर्शन क्यों नहीं होता? वह बोला नाक की आड़ हो रही है । जो नाक कटवा डालो तो नारायण दीखें, नहीं तो नहीं । उनमें से किसी मूर्ख ने कहा कि नाक जाये तो जाये परन्तु नारायण का दर्शन अवश्य करना चाहिये। उसन कहा कि मेरी भी नाक काटो, नारायण को दिखलाओ । उस ने उस की नाक काट कर कान में कहा कि तू भी ऐसा ही कर, नहीं तो मेरा और तेरा उपहास होगा । उस ने भी समझा कि अब नाक तो आती नहीं इसलिए ऐसा ही कहना ठीक है । तब तो वह भी वहाँ उसी के समान नाचने, कूदने, गाने, बजाने, हंसने और कहने लगा कि मुझ को भी नारायण दीखता है। वैसे होते-होते एक सहस्र मनुष्यों का झुण्ड हो गया और बड़ा कोलाहल मचा और उन्होंने अपने सम्प्रदाय का नाम 'नारायणदर्शी' रक्खा ।

राजा ने सुना तो उनको बुलाया । जब राजा उनके पास गया तब तो वे बहुत नाचने, कूदने, हंसने लगे । तब राजा ने पूछा कि यह क्या बात है । उन्होंने कहा कि साक्षात् नारायण हमको दीखता है ।

(राजा) हमको क्यों नहीं दीखता?

(नारायणदर्शी) जब तक नक है तब तक नहीं दीखेगा और जब नाक कटवा लोगे तब नारायण प्रत्यक्ष दीखेंगे । राजा ने विचारा कि यह बात ठीक है, अपने ज्योतिषी से कहा–

ज्योतिषी जी ! मुहूर्त्त देखिये ।

ज्योतिषी जी ने उत्तर दिया–जो हुकुम अन्नदाता ! दशमी के दिन प्रातःकाल आठ बजे नाक कटवाने और नारायण के दर्शन करने का बड़ा अच्छा मुहूर्त्त है । वाह रे ! अपनी पोथी में नाक काटने कटवाने का भी मुहूर्त्त लिख दिया। जब राजा की इच्छा हुई और उन सहस्र नकटों के सीधे (भोजन बनाने का सामान) बांध दिये तब तो वे बड़े ही प्रसन्न होकर नाचने-कूदने और गाने लगे ।

यह बात राजा के दीवान आदि कुछ-कुछ बुद्धि वालों को अच्छी न लगी । राजा के एक चार पीढ़ी का बूढ़ा ९० वर्ष का दीवान था । उसको जाकर उस के परपोते ने जो कि उस समय दीवान था; वह बात सुनाई । तब उस वृद्ध ने कहा कि वे धूर्त हैं । तू मुझ को राजा के पास ले चल । वह ले गया । बैठते समय राजा ने बड़े हर्षित होके उन नाककटों की बातें सुनाईं ।

दीवान ने कहा कि सुनिये महाराज ! ऐसी शीघ्रता न करनी चाहिए । विना परीक्षा किये पश्चात्ताप होता है ।

(राजा) क्या वे सहस्र (हजारों) पुरुष झूठ बोलते होंगे?

(दीवान) झूठ बोलो या सच, विना परीक्षा

के सच झूठ कैसे कह सकते हैं?

(राजा) परीक्षा किस प्रकार करनी चाहिए।

(दीवान) विद्या, सृष्टिक्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से।

(राजा) जो पढ़ा न हो वह पीरक्षा कैसे करे?

(दीवान) विद्वानों के संग से ज्ञान की वृद्धि करके।

(राजा) जो विद्वान् न मिले तो?

(दीवान) पुरुषर्थी (मेहनती) को कोई बात दुर्लभ (मुश्किल) नहीं है।

(राजा) तो आप ही कहिए कैसा किया जाए?

(दीवान) मैं बुड्ढा और घर में बैठा रहता हूँ और अब थोड़े दिन जीऊंगा भी। इसलिए प्रथम परीक्षा मैं कर लेऊँ। तत्पश्चात् जैसा उचित समझें वैसा कीजियेगा।

(राजा) बहुत अच्छी बात है। ज्योतिषी जी! दीवान जी के लिये मुहूर्त्त देखो।

(ज्योतिषी) जो महाराज की आज्ञा! यही शुक्ल पंचमी १० बजे का मुहूर्त्त अच्छा है।

जब पञ्चमी आई तब राजा जी के पास आ कर आठ बजे बुड्ढे दीवान जी ने राजा जी से कहा कि सहस्र दो सहस्र सेना लेके चलना चाहिए।

(राजा) वहाँ सेना का क्या काम है?

(दीवान) आपको राज्य व्यवस्था की जानकारी नहीं है। जैसा मैं कहता हूँ वैसा कीजिये।

(राजा) अच्छा जाओ भाई, सेना को तैयार करो। साढ़े नौ बजे सवारी करके राजा सबको लेकर गया। उस को देखकर वे नाचने और गाने लगे। जाकर बैठे। उनके महन्त जिस ने यह सम्प्रदाय चलाया था, जिसकी प्रथम नाक कटी थी उस को बुलाकर कहा कि आज हमारे दीवान जी को नारायण का दर्शन कराओ। उसने कहा अच्छा। दस बजे का समय जब आया तब एक थाली मनुष्य ने नाक के नीचे पकड़ रक्खी। उस ने पैना चाकू ले नाक काट थाली में डाल दी और दीवान जी नाक से रुधिर की धार छूटने लगी। दीवान जी का मुख मलिन पड़ गया।

फिर उस धूर्त्त ने दीवान जी के कान में मन्त्रोपदेश किया कि आप भी हंसकर सब से कहिये कि मुझ को नारायण दीखता है। अब नाक कटी हुई नहीं आवेगी। जो ऐसा न कहोगे तो तुम्हारा बड़ा ठट्ठा होगा, सब लोग हंसी करेंगे।

वह इतना कह अलग हुआ और दीवान जी ने अंगोछा हाथ में ले नाक की आड़ में लगा दिया। जब दीवान जी से राजा ने पूछा, कहिये! नारायण दीखता है वा नहीं? दीवान जी ने राजा के कान में कहा कि कुछ भी नहीं दीखता। वृथा इस धूर्त्त ने सहस्रों मनुष्यों को भ्रष्ट किया। राजा ने दीवान से कहा अब क्या करना चाहिये? दीवान ने कहा–इन को पकड़ के कठिन दण्ड देना चाहिए। जब लों जीवें तब लों बन्दीघर में रखना चाहिए और इस दुष्ट को कि जिसने इन सब को बिगाड़ा है गधे पर चढ़ा बड़ी दुर्दशा के साथ मारना चाहिए। जब राजा और दीवान कान में बातें करने लगे तब उन्होंने डर के भागने की तैयारी की परन्तु चारों ओर फौज ने घेरा दे रक्खा था, न भाग सके। राजा ने आज्ञा दी कि सब को पकड़ बेड़ियां डाल दो और इस दुष्ट का काला मुख कर गधे पर चढ़ा,इस के कण्ठ में फटे जूतों का हार पहिना सर्वत्र घुमा छोकरों से धूड़ राख इस पर डलवा चौक चौक में जूतों से पिटवा कुत्तों से लुंचवा मरवा डाला जावे। ❑❑

साभार–महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाश से

पशुबलि, पाषाण पूजा, मूर्ति पूजा, महाकाल पूजा, शिवलिंग पूजा गणेश पूजा, छठ पूजा, केदारनाथ यात्रा, अमरनाथ यात्रा, हजयात्रा आदि ये सब भेड़चाल के ही रूप हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की खरी-खरी बातें

प्रस्तुति :-सौरभ कुमार शास्त्री (मो०-८९२०६८०८९६)

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने चक्रांकित मतानुयायी राव कर्णसिंह को कहा, "तुमने क्षत्रियों का धर्म छोड़कर यह भिखारियों का चिह्न (तिलक) अपने मस्तक पर क्यों धारण किया है? यदि शस्त्रार्थ करना चाहते हो तो उदयपुर, धौलपुर के राजाओं से जाकर लड़ो। यदि शास्त्रार्थ करना चाहते हो तो अपने गुरु वैष्णवाचार्य रंगाचार्य को बुला लाओ।"

राव कर्णसिंह ने कहा, "आप गंगा जी को नहीं मानते?"

स्वामी दयानन्द जी ने कहा, "हम लोगों की (संन्यासियों की) गंगा तो हमारा कमण्डल ही है। यही हमारी गंगा (जल का पात्र) है। गंगा का पानी पीने के लिये है। इससे मोक्ष नहीं मिलता। मोक्ष तो शुभ कर्मों से प्राप्त होता है।"

हाथ की रेखाओं से भविष्य कथन करने की बात पूछने पर ऋषि दयानन्द ने बताया, "हथेली में तो हाड़ चाम और रुधिर है और कुछ नहीं।"

जन्म पत्र के बारे में कहा, "जन्मपत्रं किमर्थम् कर्मपत्रं श्रेष्ठम्। जन्मपत्र बेकार है। कर्म ही श्रेष्ठ है।"

अनूप शहर में मूर्ति पूजा के खण्डन से रुष्ट होकर एक ब्रह्मण ने स्वामी दयानन्द सरस्वती को पान में विष दे दिया। सैय्यद मोहम्मद तहसीलदार ने उसे पकड़ लिया और स्वामी दयानन्द जी के सम्मुख प्रस्तुत किया।

स्वामी जी ने विषदाता को क्षमा कर दिया और कहा, "मैं संसार को बन्दी बनाने नहीं अपितु उसे बन्धन से छुड़ाने आया हूँ। यदि दुष्ट अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता तो हम अपनी श्रेष्ठता क्यों त्यागें।"

नये-नये मुसलमान बने धर्मपुर के एक जमींदार ने स्वामी दयानन्द जी से पूछा, "हम किस प्रकार शुद्ध हो सकते हैं ?"

स्वामी जी का उत्तर था, "वेदानुकूल आचरण करो, स्वयमेव शुद्ध हो जाओगे।"

ग्रहण से सूतक नहीं मानना चाहिए....

कर्णवास निवास के समय एक बार सूर्यग्रहण हुआ। उस समय एक सज्जन ने स्वामी दयानन्द से पूछा, "आज ग्रहण है सूतक किस समय तक मानना चाहिए ?"

महर्षि ने उत्तर दिया सूतक कोई चीज नहीं है।

पुनः पूछा, "ग्रहण में भोजन कब करें।"

स्वामी दयानन्द ने कहा, "जब भूख लगे भोजन करो।"

अनूप शहर में जब लोग गंगा किनारे आकर पूर्वजों का तर्पण करते हुए पितरों को जल देने लगे (गंगा का जल गंगा में छोड़ने लगे) महर्षि दयानन्द सरस्वती ने कहा, "अरे मूर्खो ! जल में जल मत डालो। यदि जल डालना ही है तो किसी वृक्ष की जड़ में डालो ताकि वृक्ष बढ़े।"

एक व्यक्ति ने स्वामी दयानन्द सरस्वती को दण्डवत् कहा। ऋषि दयानन्द जी ने कहा 'नमस्ते' करना उचित है।

यज्ञोपवीत ग्रहण करने में आलस्य और कंजूसी क्यों करते हो ?

सोरों में स्वामी दयानन्द जी ने उपदेश देते हुए कहा, "कितने खेद की बात है कि तुम लोग बूढ़े पिता या दादा के मरने पर मृत्युभोज में हजारो रुपये खर्च करते हो किन्तु आर्यत्व के प्रतीक यज्ञोपवीत ग्रहण करने के लिए दो रुपये खर्च करने में आनाकानी करते हो। यज्ञोपवीत ग्रहण करने का

(शेष पृष्ठ २७ पर)

॥ ओ३म् ॥

साहित्य समीक्षा–

–राजेशार्य आट्टा (मो०: ०९९९१२९१३१८)

आदरणीया बहन श्रीमती उत्तरा नेरूर्कर वैदिक विदुषी हैं । वैदिक सिद्धान्तों के प्रति इनकी निष्ठा इनके पिताजी के पुरुषार्थ का परिणाम है, और विद्वत्ता इन्होंने अपने स्वाध्याय व पुरुषार्थ के बल पर स्वयं अर्जित की है । इसके लिए इन्होंने समय-समय पर वैदिक विद्वानों से प्रत्यक्ष मार्ग दर्शन भी पाया है । इञ्जीनियरिंग में अध्ययन कर वेद शास्त्रों की गहनता की तरफ आकर्षित होना इनके पूर्वजन्म के संस्कारों को दर्शाता है । विद्या पिपासुओं को वैदिक दर्शनों के रहस्यों में डुबकी लगवाने (अध्यापन करने) के अतिरिक्त ये देश के विभिन्न भागों में जाकर व्याख्यानों द्वारा भी वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार करती रहती हैं । 'दयानन्द सन्देश' में वेद शास्त्र, उपनिषद् आदि के गम्भीर विषयों पर विदुषी लेखिका के लेख छपते रहत हैं । उनमें से कुछ लेखों का संग्रह करके **'झेन पब्लिकेशन्स'** द्वारा **'अन्तर्निनाद'** पुस्तक प्रकाशित की गई है । कुछ आवश्यक परिवर्तन के साथ पुस्तक आकर्षक बन गई है । प्रस्तुत पुस्तक योगदर्शन पर आधारित है । इसमें लेखिका ने विद्वानों के विचारों पर चिन्तन कर सरल भाषा में योग के रहस्यों का उद्घाटन किया है । लेखिका ने योग के सैद्धान्तिक व व्यावहारिक पक्ष को बड़ी सरलता व दक्षता के साथ प्रस्तुत किया है । आशा है, योग व अध्यात्म के मार्ग पर आरूढ़ होने के इच्छुक नये साधकों को यह पुस्तक मार्ग दिखायेगी और प्रौढ़ साधकों को आनन्दित करेगी ।

पुस्तक का नाम :– **'अन्तर्निनाद'**

प्रकाशक – झेन पब्लिकेशन्स

माऊली मीडिया प्राईवेट लिमिटेड का एक प्रभाग
60, जुहू सुप्रीम शॉपिंग सेन्टर,
गुलमोहर क्रॉस रोड नम्बर 9, जे.वी.पी.डी. योजना,
जुहू, मुंबई-400049, भारत

- दूरभाष : +91 9022208074
- ई-मेल : info@ zenpublications.com
- मूल्य : 150 रुपये

अन्य प्राप्ति स्थान :–

- ऐमाजॉन : https://www.amazon.in/अन्तर्निनाद-पाजञ्जल-योगदर्शन-कुछ-विवेचनdp/9393254001
- फ्लिप्कार्ट : https://www.flipkart.com/antarninad-patanjal-yogdarshan-parkuchh-vivechan/p/itme72a3296693bd
- जैन : https://www.zenpublications.com/Forms/29756F0A Antarninad Patanjal Yogdarshan Par Kuchh Vivechan.aspx

मुगल महान थे या तालिबान थे ? (पृष्ठ ५ का शेष)

लेखक अबुजैद ने कहा है कि भारतीय रानियाँ बिना किसी पर्दे के राजसभा में उपस्थित होती थीं। यानि ये यहाँ तब की प्रतिमायें है जब अरब में महिलाओं को बुर्के में पूरा लपेट दिया था।

इसके बाद यहाँ मुग़ल तालिबानियों ने वो काम आरम्भ कर दिया जो आज अफगान तालिबान अफगानिस्तान में नाइजीरिया में बोको हरम, ईराक सीरिया में आई एस आई एस कर रहा है। और जब वहाँ ये सब होता है तब भारत के तालिबानी सोच के मौलाना भी बुर्के पर्दे छोटी बच्चियों की शादी की वकालत करते दिख जाते हैं। और विडम्बना देखिये जब ये सब होता है तब देश के ज्ञानचंद कथित बुद्धिजीवी इनके फतवों और इस निरंकुश शरियत पर सवाल के बजाय हिन्दू समाज की कुरीतियों पर बैठकर रो रहा होता है। जबकि हमारे ग्रन्थो में बाल-विवाह व पर्दाप्रथा का कहीं भी वर्णन व चिह्न नहीं मिलता। रामायण हो या महाभारत गार्गी जैसी विदुषी हो या विश्ववारा, अपाला, घोषा, लोपामुद्रा, मैत्रेयी, सिकता, रत्नावली सब बिना पर्दे के महान विदुषी नारी रहीं। तब ये प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि यह प्रथाएं भारत में कब और क्यों प्रारम्भ हुईं? और नारी शिक्षा कैसे समाप्त हुई? इस सवाल का एक ही जवाब है कि मुगल महान नहीं बल्कि तालिबान थे। जिसे इस बात का शोध करना हो, वो आधुनिक अफगानिस्तान की सैर कर सकता है। जहाँ आज भी बिना बुर्के पर कोड़े और घरों से लड़कियां महिलाएं उठाई जा रही हैं। लड़कियों के स्कूल बंद और मासूम बच्चियों को बेचा जा रहा है। ❑❑

कैसा है अरब का नया धर्म जो मच गया विवाद ! (पृष्ठ १० का शेष)

और मध्य एशिया में अब्राहम कहाँ से आया? बताया जाता है कि अब्राहम भगवान श्री राम का अपभ्रंश शब्द है। क्योंकि अगर देखा जाये तो मध्य एशिया और यूरोप में श्री राम जी को ही अब्राहम कहा जाता है। कारण अब्राहम अपने भाई से अलग हुए और राम जी भरत से अलग हुए, अब्राहम ने अपनी पत्नी हागर को निष्कासित किया, जबकि राम जी द्वारा सीता जी को निष्कासित करने की बात पढने को मिलती है। इसी कारण अगर अब्राहम की कहानी पढ़ें या श्री राम जी की दोनों में काफी समानताएं पाई जाती हैं। बल्कि कई लोगों का मानना है फिलिस्तीन का शहर रामल्लाह जो पहले रामनगर के नाम से श्रीराम जी ने नाम पर था। ऐसे ही राम से अब्राहम कर दिया। यानि ये साफ है कि कभी सनातन धर्म की जड़ें सम्पूर्ण संसार में फैली थीं। अब देर आये दुरुस्त आये या कहो आज नहीं कल इनके ये धार्मिक प्रोजेक्ट फेल हो जायेंगे और इन्हें फिर से अपने महापुरुषों राम-कृष्ण की शरण में आना ही पड़ेगा । ❑❑

महर्षि दयानन्द सरस्वती की खरी-खरी बातें (पृष्ठ २५ का शेष)

शास्त्र निर्दिष्ट काल टल जाने पर भी यथाशक्य यह संस्कार अवश्य करवाना चाहिए क्योंकि **"यथाकथञ्चित् धर्मो रक्षणीय:"** येन केन प्रकारेण धर्म की रक्षा होनी चाहिए ।

ईश्वर भक्ति अकर्मण्यता का नाम नहीं...

बाबा गोविन्ददास ने जब यह उपदेश दिया कि 'हरि भजो छोड़ दो सब धन्धा ।

इस बात का महर्षि दयानन्द सरस्वती ने प्रतिवाद करते हुए यह कहा, "भक्ति के नाम पर सब शुभ कर्मों को छुड़ाने का उपदेश देना अनुचित है । क्या हम नित्य के कर्मों को छोड़ सकते हैं? कदापि नहीं ।" ❑❑

आर. एन. आई. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/१२/२०२१
भार- ४० ग्राम

दिसम्बर 2021

रजिस्टर्ड नं० DL (DG-11)/8029/2021-23
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०२१-२३
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2021-23

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।

२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करवेफ ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।

३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।

४. अंक वेफ रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।

५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

–दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

• प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
• विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
• उपहार संस्करण	मुद्रित मूल्य 1100 रु.	प्रचारार्थ 750 रु.	
• स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30, 8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph.:011-43781191, 09650522778
E-mail: aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.....

ग्राम.....

डा०.....

जिला.....

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।